हमारा साहित्य

1997

व्यक्तित्व विशेषांक



हमारा साहित्य

1997

व्यक्तित्व विशेषांक

सम्पादक

डॉ० उषा व्यास

जम्मू एण्ड के. अकेडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज
जम्मू

हमारा साहित्य

1997

व्यक्तित्व विशेषांक

सम्पादक

डॉ० उषा व्यास

जे. एण्ड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़,
जम्मू

प्रकाशक :

बलवंत ठाकुर

सचिव

जे. एण्ड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़,

जम्मू।

मूल्य : 27/-रुपयें

मुद्रक : मैसर्ज बी. डी. प्रिंटर्स

कोट किशन चंद, जालन्धर।

भूमिका

हमारा साहित्य 1997 का यह अंक प्रिय पाठकों के हाथों में सौंपना हमारे लिये सुखद है। हमने पिछले कुछेक वर्षों से 'हमारा साहित्य' के कुछ अंक राज्य के विशिष्ट व्यक्तित्वों के नाम किये हैं। ये व्यक्तित्व उतिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान 'निबोधित' का रुपायन हैं। अपने इसी प्रयास की एक और कड़ी हमने ऐसे ही कुछ अन्य विशिष्ट व्यक्तित्व माणिकों से पिरोयी है जिससे आप, कला, संस्कृति, साहित्य से जुड़े लोगों के राज्य को दिये योगदान से परिचित भी होंगे और लाभान्वित भी। यह संदर्भ उस सेतु का भी है जो विभिन्न विचारधाराओं, वादों और मतमतान्तरों में समन्वय स्थापित करने का साधन बनता है। आशा है इसकी पठनीयता, इसकी सार्थकता को रेखांकित करेगी।

—उषा व्यास

इस अंक में

पूंछ के सूफ़ी–साईं फ़क्करदीन

□ प्रो. देवेन्द्र सिंह

जम्मू-कश्मीर राज्य के पंजाबी साहित्येतिहास में अनेक महान सर्जकों का उल्लेख किया जा सकता है जिनमें से सूफ़ी परम्परा के अंतिम और समकालीन हस्ताक्षर साईं फ़क्करद्दीन का ज़िक्र बहुत महत्वपूर्ण है। यदि पंजाबी की समूची सूफ़ी काव्य-परम्परा पर एक विहंगम दृष्टि डालें तो अनुभव होता है कि शेख़ फ़रीदुद्दीन गजशंकर पंजाबी साहित्य के आदि-काल के प्रारम्भिक योगदानियों में से एक हैं। उनका समय (1173–1265 ई.) निश्चित है। शेख़ फ़रीद के एक सौ अठारह दोहे और चार शब्द श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में संकलित हैं। ये पंजाबी साहित्य की महत्वपूर्ण थाती हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पंजाबी साहित्य का आरम्भ, मुख्यतः, सूफ़ी कवियों की छत्र-छाया में हुआ। उत्तरवर्ती सूफ़ी कवियों ने अपने पूर्ववर्त्तियों द्वारा रखी गयी नींव पर पंजाबी साहित्य के भवन का निर्माण करने में विशेष भूमिका निभाई। यद्यपि पंजाबी साहित्य की काव्य-परम्पराओं में, नाथ-सिद्ध-काव्य-परम्परा, भक्ति-काव्य-परम्परा, गुरमत काव्य-परम्परा और वीररस काव्य-परम्परा का भी विशेष महत्व है, तथापि पंजाबी सूफ़ी काव्य-परम्परा, अपने आध्यात्मिक पक्ष के बावजूद बहुत लोकप्रिय दिखाई पड़ती है। इसका मुख्य कारण है सूफ़ी कवियों का जनता से जुड़ कर काव्य-सृजन करना।

शेख़ फ़रीद के पश्चात्, शाह हुसैन और सुल्तान बाहू (गुरु नानक-काल), बुल्ले शाह, वजीद आदि (वारिस-काल), हाशम (रणजीत सिंह-काल), गुलाम फ़रीद (अंग्रेजी राज्य का प्रारम्भिक काल), प्रमुख सूफ़ी कवि हुए हैं, परन्तु बुल्ले शाह को सूफ़ी कविता-परम्परा में सिरमौर माना जाता है। यह परम्परा वर्तमान युग में भी प्रवहमान तथा जीवन्त होने के कारण महत्वपूर्ण है। पंजाबी की आध्यात्मिक काव्य-परिपाटियों में यह गौरव इसी काव्य-परम्परा को प्राप्त है और यहां तक कि धनी राम 'चात्रिक', मोहन सिंह 'दीवाना', डा. दीवान सिंह, प्रो. मोहन सिंह प्रभृति, आधुनिक युगीन कवियों ने भी अपने-अपने काव्य-सर्जन में, सूफ़ी विचारधारा का सदुपयोग किया है।

जम्मू कश्मीर राज्य के कवि साईं फ़क्करदीन (मृत्यु–24 मार्च, 1987) इसी परम्परा के अंतर्गत आते हैं। पुंछ से जुड़े साईं जी का अपने सम्बन्ध में कथन है–

ये–याद रक्खो पुंछ वतन साडा,
मेंडर विच वसदे, गुज्जर ज़ात दे हां।

× × ×

पठानातीर मसकीन दा पिंड भाई,
असल गुज्जर कौमी गुजर ज़ात दे हां।
मीम–मुलक नूरी, ज़िला पुण्छ मेरा,
मेंडर वतन ते ख़ास तहसील उत्थे।
पठानातीर फ़कीर दा पिंड पहिला,
सलवा डाकखाना दोए, मील मेरा।

स्पष्ट है कि साईं जी के पूर्वज गुजरात से पुंछ ज़िले की मेंडर तहसील के अन्तर्गत पठानातीर नाम ग्राम में आ बसे थे। साईं जी की प्रथम पुस्तक 'मद्दह रमूज़-उल गंज' के मुख-पृष्ठ पर उनका पूरा पता इस प्रकार प्रकाशित है–मौजा पठानातीर, तहिसील मेंडर डाकखाना सलवाह ज़िला पुंछ। यह पुस्तक पाकिस्तान से प्रकाशित हुई। जीवन के लगभग पैंतीस वर्ष पठानातीर में गुज़ारने के अनन्तर, दूसरी बीवी की मृत्यु हो जाने पर, वे फ़कीरी वेश में, उक्त ग्राम त्याग कर, पंजाब और कश्मीर के अटन हेतु निकल पड़े। अन्ततोगत्वा, वे ग्राम देग़वार में आ बसे–

अलिफ़–अज्ज में पुणछ तहिसील हवेली,
पिण्ड खास दिग़वार वेखो।
पक्का डाकखाना शहिर पुणछ अंदर,
दोइ मील उत्थों झुग्गी पार देखो।

पुंछ ज़िला अन्तर्गत दो दिग़वारों का ज़िक्र होता है–दिग़वार तेड़वां और दिग़वार मलदिआला। उनका सम्बन्ध दिग़वार मलदिआला से है। इस ग्राम की प्रसिद्धि मुख्यतः उन्हीं से है।

साईं फ़क्करदीन पांच वक्तों के नमाज़ी और चिश्ती सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे। पंजाबी के प्रथम सूफी कवि शेख़ फ़रीद भी चिश्ती-सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे। इस नाते, साईं फ़क्करदीन, शेख फ़रीद के संदर्भ में विचारणीय हैं।

यद्यपि साईं हमारे समकालीन रहे हैं, तथापि उनकी जन्म-तिथि के सम्बन्ध में बहुत विश्वास के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्ध में कोई अंत:साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। मृत्यु के समय उनकी आयु को देखते हुए कहा जा सकता है कि वे उन्नीसवीं सदी के अंत में उत्पन्न होकर 24 अगस्त, 1987 को अल्लाह को प्यारे हुए। उनसे हुई मुलाकातें और उनके श्रद्धालुओं की मान्यता के आधार पर प्राय: यही अवधारणा उपयुक्त प्रतीत होती है। उनकी चार शादियों का हवाला मिलता है। तीसरी शादी बीबी नासर बी से सन् 1952-53 में हुई थी। उस समय बीबी नासर बी के पहले विवाह से दो पुत्र-मौलवी सैद मुहम्मद और मौलवी तुल्ला थे। ये दोनों आज भी दिग़वार गांव के निवासी हैं। नासर बी के देहावसान के पश्चात् साईं जी ने चौथी शादी वीर्वा अहमद बी से की जिन्होंने अन्तिम अवस्था में उनका पूरी तरह साथ दिया। तीसरी शादी से साईं जी के घर बीबी सकीना का जन्म हुआ-

होई एक लड़की तैनूं उमर सारी,
पिच्छे कौन हरूद पहुंचावणे नूं।

साईं जी की रचनाओं में, चचेरे भाइयों से ज़मीन-जायदाद के झगड़ों का वर्णन भी मिलता है, परन्तु यह वर्णन प्रत्यक्ष रूप में न होकर कमर शाहबान और रज़िया बेग़म की प्रेम-गाथा में परोक्ष रूप में उपलब्ध है :

साडे नाल अदावत रक्खण,
चाचेज़ाद मूंह आले।
× × ×
जिऊं कर फ़क्करदीन सताइआ
चाचे ज़ादिआं भाइआं (क. ट. ङ)

साईं जी के काव्य से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि बचपन ही से उनकी प्रवृत्ति अल्लाह की बंदगी और फ़कीरी की ओर थी। एक दास्तान में उनका स्वकथन उपलब्ध है कि उन्हें नूरी जलवे का दीदार हुआ था जिसके उपरान्त वे अचेत हो गये थे। चेतना लौटने पर उन्होंने घर-बार त्याग, फ़कीरी बाना धारण किया और पंजाब की राह ली। उनके जीवन की यह घटना मौलाना जमाल उद्दीन से मिलती है :

अचनचेती रात सिआही,
नजर पिआ चमकारा।
× × ×

आवल मझिआं चारन वाला,
गुज्जर कौम खटाना।
जिस दम नूर आइआ विचसीने,
होइआ वली रब्बा ना।

साईं जी के पीर, सैय्यद फ़ैज़ रसान थे। वे मिलनगाम (काश्मीर) के निवासी थे। साईं जी के जीवन में जादुई परिवर्तन लाने वाले वही थे। तदुपरान्त साईं पुंछ आ बसे, जहां लोगों में उनकी मान्यता बढ़ गयी। उनकी लोकप्रियता ही के कारण अब भी हर साल बारह रबी-उल-अव्वल के दिन सालाना उर्स लगता है। सप्ताह-भर चलने वाले उक्त उर्स में हिन्दू, सिख और मुसलमान श्रद्धालु हजारों की संख्या में भाग लेते हैं। इस अवसर पर साईं जट की रचनाओं का पाठ बहुत ही आनन्दपूर्वक किया जाता है। साईं जी के व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि वे हिकमत भी जानते थे और ताबीज़, जादू, टोटके आदि में भी विश्वास रखते थे। रज़िया बेग़म के, ज़बरदस्ती निकाह के समय बीमार हो जाने वाले प्रसंग में साईं जी ने हिकमत के कुछ खूबसूरत नुस्खे भी अंकित किये हैं।

उन्होंने अपनी एक रचना में 'चार यारों' का वर्णन किया है जो उनके सुन्नी होने का प्रमाण है। इसके साथ ही वे बड़े फ़ख्र से अपने गुज्जर होने का दावा भी करते हैं:

गफ़लत अन्दर गुज्जर शाइर

× × ×

फ़क्करदीन बडानिआ गुज्जरा

बताया जाता है कि 1965-66 में आप हज के लिए मक्का-शरीफ़ भी गये थे। वैसे, हज के लिए तृष्णा उनकी शाइरी में प्राय: अभिव्यक्त हुई है और यह अभिव्यक्ति, निस्सन्देह बहुत ही भावपूर्ण बन पड़ी है।

कल्चरल अकादमी जम्मू ने, पंजाबी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के सेवार्थ उन्हें 14 फरवरी 1974 को सम्मानित किया था। इस अवसर पर राज्य के तत्कालीन मुख्य-मंत्री सैय्यद मीर कासिम ने उन्हें एक पश्मीना शाल और छह सौ रुपये भेंट किये थे।

साईं जी यदा-कदा कुछ शे'र कहते थे और उनका सही शौक उनके महान ग्रंथों के प्रणयन का कारण बना। ये शे'र और दास्तानें इतनी लोकप्रिय हुईं कि आज भी उनका काव्य लोगों के जिह्वाग्र पर है। उनकी सरल-सहज-साधारण लगने वाली अभिव्यक्तियां अनेक लोगों के लिए जीवन-पथ-प्रदर्शक सूफ़ी रहस्य हैं।

साईं जी के तीन ग्रन्थों का विवरण उपलब्ध है :

(अ) 'मद्दह रमूज़-उल-गंज' (पाकिस्तान से प्रकाशित)

(अ) 'हिदायतनामा फ़क्करदीन' (पाकिस्तान ही से प्रकाशित और अव अप्राप्य)

(इ) 'ज़िया-उल-कमर' (1981 में प्रकाशित)

'मद्दह रमूज़-उल-गंज' ऐसी मसनवी है जिसमें, मूलत: पीरों के पीर हज़रत ग़ौस अलसाकलीन की करामातों का वर्णन है। करामातों के वर्णन का आपका मुख्य उद्देश्य-''आधुनिक युग में इस प्रकार की शख्सीयत भूली-भटकी जनता के लिए रहनुमा बन सकती है।''

'मद्दह रमूज़-उल-गंज में, यद्यपि, पीरों के पीर हज़रत ग़ौस की करामातों का वर्णन है तथापि पंजाबी काव्य-परम्परा के संदर्भ में इसे किस्सा-परम्परा के अन्तर्गत रखना अधिक उपयुक्त है और इसे फ़ारसी मसनवी का रूपान्तरण कहना अपेक्षाकृत युक्तियुक्त है। इसी प्रकार 'ज़िया-उल-कमर' को 'किस्सा कमरशाहबान और रज़िया बेग़म की संज्ञा से अभिहित करना उचित प्रतीत होता है। इन कृतियों को विशुद्ध सूफ़ी रचनाओं के रूप में तो ग्रहण नहीं किया जा सकता, परन्तु पंजाबी किस्सा-काव्य परम्परा की भांति, इन्हें, इश्क-ए-मज़ाजी को इश्क-ए-हकीकी की रंगत देकर रची गई कृतियां मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है। साईं जी ने इन रचनाओं में इस्लामी दर्शन और सूफ़ी परम्पराओं को बहुत व्यापक रूप में प्रस्तुत किया है जिससे उनका इस्लामी रहस्य-साधना सम्बन्धी ज्ञान प्रमाणित होता है।'

'मद्दह रमूज़-उल-गंज के प्रारंभ में-'

अ. बारी ताला की सिफ़्त में,

आ. पैगम्बर की शान में ना'त,

इ. मदीने के मालिक की तरफ़ ख़त भेजना,

ई. चार यारों की सिफ़्त

उ. हज़रत इमाम हसन और इमाम हुसैन की सिफ़्त

ऊ. हज़रत ग़ौस आज़म कुत्तब रब्वानी की सिफ़्त

-आदि संदर्भ उनके इस्लामी दर्शन के समस्त पक्षों में सम्बोधित ज्ञान के प्रमाण हैं। इसी प्रकार 'ज़िया-उल-कमर' के प्रारम्भ में-

(क) वारी ताला की सिफ़्त में,

(ख) हज़रत जनाब सरवर-ए-काइनात की सिफ़्त,

(ग) तारीफ़-ए-मुहम्मदी,

(घ) तारीफ़-ए-चार यार,
(ङ) हज़रत ग़ौस आज़म कुत्तब रब्बानी की सिफ़्त,
(च) शजरा शरीफ़ हज़रत मूसा,
(छ) शजरा शरीफ़ बुज़ुर्ग चार यार,
(ज) बारह अमाम
(झ) शजरा हज़रत मुइनुद्दीन अजमेरी,
(ञ) काज़ी मुजीब मालदुआत की दरगाह में दुआ।
(ट) जली कलम

–आदि में भी साईं जी अपने इस्लामी दर्शन और रहस्यवादी पक्ष को ही पुष्ट करते हैं।

इन रचनाओं को आधार बना कर, साईं जी के सूफ़ी विचारों और दर्शन पर प्रकाश डाला जा सकता है।

सूफ़ियों के ईश्वर विषयक चिंतन में अनेकरूपता है। कट्टरपंथियों के अनुसार परमात्मा काल-निरपेक्ष, स्थान-निरपेक्ष और संपूर्ण है। उसकी सिफ़्त भी अपरिवर्तनीय है। वह सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, इन्द्रिय-अनुभवातीत, प्रकाश और अंधकार की सत्तर हज़ार तहों में छिपा हुआ (जलवा ते महिमा) सृष्टि का रचयिता तथा अन्य अनेक विशेषताओं से युक्त है। मनुष्य एवं ईश्वर का सम्बन्ध निरंकुश स्वामी और दास का सम्बन्ध है। बारीताला सिफ़्त में साईं जी ने परमात्मा के स्वरूप और उसकी विशेषताओं का वर्णन किया है।

अल्लाह इक रहिसी बाकी फ़क्करदीन

× × ×

फ़इकूं थीं अमन-अमान कीता

× × ×

बन्दे वासते रब्ब ऐलान कीता

× × ×

ऐथे कैद ओथे शादमान कीता
अरबां जोड़ चीजां इन्सान कीता

सुब्हान अल्लाह सुब्हान अल्लाह
अरश अज़ीम कीता रब्ब पैदा
अव्वल सब जहानों.
हारे पैदाइश पिछों कीती
बाद खबर कुरानों। ('ज़िआ-उल-कमर')

साईं जी सूफ़ियों के वहदत सिद्धांत से यथेष्ठ प्रभावित हैं और वास्तविक सत्ता को एक मानते हुए उसके अतिरिक्त किसी भी अन्य सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। यह सत्ता परमात्मा है और दृश्यमान जगत उस परम सत्ता की अभिव्यक्ति है। इसी सिद्धान्त पर 'हमाओसत' अर्थात् सब कुछ वही है का सिद्धान्त आधारित है।

सूफ़ी विचारधारा में नफ़स और रूह का प्राथमिक स्थान है। नफ़्स को मारना और आत्म-ज्ञान प्राप्त करना मनुष्य का प्राथमिक कर्त्तव्य है। इसीलिए सूफ़ी अनुभव के परमात्मा के बिना सब कुछ नश्वर है। स्वाभाविक ही है कि नफ़्स (काम-वासना) की कैद का अर्थ दुःख भोगना है और रूह की पहचान (आत्म-ज्ञान) शारीरिक विषय-वासनाओं की कैद से मुक्त होने पर ही सम्भव है। इसलिए मनुष्य को परमात्मा की भक्ति के लिए प्रेरित किया गया है। साईं जी ने संसार को नश्वर बताते हुए मानवों को श्रेष्ठ आचरण की प्रेरणा दी है।

दुनियां उप्पर चार दिहाड़े
शेखी ते वडिआई
× × ×
उत्थे नेकिआं दा मिलसी नेक रुतबा
गल्ल साफ़ हदीस कुरान वाली
× × ×
नीवीं नज़र करके चल फ़क्करदीना
उच्चा वेख न मौत विसार के ते

उनके काव्य में नसीहत /उपदेश/नैतिकता आदि का समावेश, इसीलिए स्वाभाविक है–

नेक अमाल कर फ़क्करदीना
आस नहीं अज्ज दम दी
× × ×
छोड़ हदाइत फ़क्करदीना
कीती दा फल पाउणा
× × ×
मतलब वेले लिफ़-लिफ़ सिजदे
ख़ान, अमीर, सुआली
× × ×

ऐ वन्दे ! कर अमल चंगेरा
विच दरबार खलोणा
काज़ी वांगूं विच अदालत
नां शर्मिन्दा होणा

इस प्रकार साईं जी एक नेक व्यक्ति को श्रेष्ठ जीवन-शैली-सत्यनिष्ठा पवित्रता अपनाने की शिक्षा देते हैं। सूफ़ी अनुभव के ऐसे पक्षों को उनके कृतित्व में उच्च स्थान प्राप्त है जो स्वाभाविक ही है।

साईं जी ने 'मद्दह रमूज़-उल-गंज' (जो ख़ाकी की प्रेम-गाथा है) और 'ज़िया-उल-कमर' (जो रज़िया बेग़म और कमर शाहबान की प्रेम-गाथा है) में सूफ़ी मत के उच्चतर लक्ष्य 'इश्क' का सुन्दर वर्णन किया है। इस प्रकार उन्होंने इश्के मिजाज़ी में इश्के हक़ीक़ी का रंग घोलकर इन कृतियों को ईश्वरीय प्रेम से परिपूरित बना दिया है।

इश्क न सौखा फ़क्करदीना,
यार मिले मर-मर के।
इश्क नदी च लक्खां डुब्बे,
पार गिआ कोई मर के।

× × ×

मूंह रखिआ में बुड्ढी पीर वाला,
मख़फ़ी रमज़ हैं होर जहान उत्ते।
ज़ाहिर होर ते बातनी होर गल्लां।
रमज़ समझ साड्डे समझाण उत्ते।

उनकी रचनाओं में सूफ़ी मत के उद्देश्यों, सूफ़ी अनुभव के भिन्न-भिन्न पड़ावों और मानवोचित कर्त्तव्यों से सम्बन्धित ऐसे अनेक सुंदर उदाहरण उपलब्ध हैं जो मनुष्य को अगले जहान में जाने से पूर्व तक कमाई करने की प्रेरणा देते हैं—

सहुरे तरफ़ चली तूं लड़की
की कुझ दाज लिआई।

× × ×

दाज न होइआ मार मुकाई,
खावंद पकड़ कटारी।

दाज बणाउंदी क्यों अज्ज रोंदी,
चल अग्गे सुख वहिंदी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साईं फ़क्करदीन, बीसवीं सदी में बाबा फ़रीद की चलाई हुई परम्परा को जीवंत और प्रवहमान रखते हैं और वे शाह हुसैन, सुल्तान बाहू, वजीद, बुल्लेशाह, गुलाम फ़रीद के विचारों की पुनरुज्जीवित करते हैं। वे मुख्यत: शरीअत-उन्मुखी सच्चे मुसलमान हैं। वे सच्चा और पवित्र जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देते हुए सदाचार और नैतिकता का पाठ पढ़ाते हैं। इस प्रकार वे नश्वर प्रेम में अविनश्वर प्रेम और गहन आध्यात्मिक अनुभूतियों को अभिव्यक्त कर, मनुष्य की ईश्वर और उसकी भक्ति से जोड़ते हैं; जभी तो वे अपने रचना-कर्म के प्रति सचेत रहते हुए कहते हैं–

शे'र मेरे दा कदर बाअज़े,
लोक पसन्द न करदे।
बाअज़े इश्क मुहब्बत वाले,
सर चशमां पर धर दे।

अनु. निर्मल विनोद

डोगरा इतिहासकार–काहनसिंह बलौरिया

❑ *डॉ अनिता बलौरिया*

ठाकुर काहन सिंह बलौरिया उन डोगरा इतिहासकारों में से है जिन्होंने जम्मू, पंजाब और हिमाचल के राजपूत-रजवाड़ों का शोषणात्मक इतिहास लिखा व आजीवन इस काम में जुटे रहे। जिसके लिए वे न सिर्फ जम्मू कश्मीर सरकार बल्कि पंजाब सरकार द्वारा भी सम्मानित किये गये। इनके जीवन चरित्र से सम्बद्ध पर्याप्त जानकारी प्राप्त नहीं होती। उनकी पुस्तकों में कहीं-कहीं इसका उल्लेख भर मिलता है। जिससे पता चलता है कि वह बसोहली के एक प्रतिष्ठित कुल में उत्पन्न हुए जिसका वहां के एक राजघराने से निकट का सम्बन्ध था। काहनसिंह का नौंवा पूर्वज गोवर्धनपाल बलौरिया का दूसरा बेटा था जिसे रियासत का वजीर बनाया गया। उसके पश्चात् गोवर्धनपाल का बेटा फतहजंग वजीर बना। 1630 में जब बलौरिया राजाओं ने बिलावर से अपनी राजधानी बसौहली में तबदील की और राजा ने वहां अपने नए महल बनवाए तो फतहजंग ने भी शाही महलों की निचली तरफ अपना निवास स्थान बनाया जिसे ''झिकला-बेहड़ा'' कहा जाने लगा। काहनसिंह के पूर्वजों के खानदान को ''झिकल-बेहड़िया'' नाम दिया गया। काहनसिंह इसी खानदान के सदस्य थे। इसी कारण वश बसोहली राज का मंत्रीपद इनके खानदान का पैतृक हो गया। काहनसिंह ने राजपूत-रजवाड़ों का गवेषणात्मक इतिहास लिखा। काहनसिंह बलौरिया का दादा बसोहली के अंतिम राजा कल्याणपाल के समय उसका मंत्री था। जब 1834 में बसौहली पर अधिकार करके यह राज्य राणा हीरा सिंह की जागीर में दे दिया गया तो बसौहली राजवंश और उसके साथ ही मंत्री का पद भी समाप्त हो गया।

काहनसिंह के पिता गजयसिंह साधारण पढ़े लिखे थे जो पहले गुलाबसिंह के रिसाले में नौकर हुए और फिर पुलिस में 'थानेदार' और 'सूबेदार' की पदवियों पर रहे। जब इनके पिता रणबीर सिंह पुरा में पुलिस सूबेदार थे तो 10 अप्रैल 1870 में कृष्णाजन्मष्टमी के दिन काहनसिंह का जन्म हुआ इस लिए इनका नाम काहनसिंह रखा गया। पांच वर्ष की आयु से ही काहनसिंह अपने पिता के साथ स्थान पर रहे। उन्होंने हिन्दी, संस्कृत व फ़ारसी में शिक्षा प्राप्त की

और अंग्रेजी का अध्ययन भी किया परन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण वह दसवीं पास न कर सके। नौकरी के क्षेत्र में भी वह हालात के शिकार होते रहे। यद्यपि नायब तहसीलदार या डिप्टी इंस्पैक्टर आफ पुलिस की पोस्ट के लिए उन के नाम की सिफारिश की गई थी परन्तु वह पुलिस में 'मुहर्रर सार्जेन्ट', 'मुहाफ़िज दफ़्तरी', 'रीडर' व अन्त में जम्मू सदर पुलिस में 'पे-सार्जेन्ट' के पद पर आसीन हुए।

जून 1929 को एक सरकारी पत्र से पता चलता है कि वह 1924-25 में सबइन्स्पैक्टर पुलिस के पद से रिटायर हुए।

उन्होंने इतिहास में खोजबीन और लेखन का काम तो सन् 1900 के बाद ही शुरू कर दिया था परन्तु उन्हें समाज सेवा और समाज सुधार में भी रुचि थी। उन्होंने सबसे पहले राजपूत बिरादरी की उन्नति और सुधार के लिए 'राजपूत सभा' की स्थापना करने का सुझाव महाराज प्रतापसिंह जी के सामने रखा। बहुत प्रयत्नों के बाद महाराज ने उन्हें अपने दरबार में बुलाया और सभा की स्थापना के सिलसिले में बातचीत थी। अन्ततः अप्रैल 1907 में सदर सभा जम्मू की स्थापना हुई जिसका नाम बदल कर अन्त में 'अमर क्षत्रिय राजपूत' सभा कर दिया गया। काहनसिंह आरम्भ से ही सभा के साथ सम्बन्धित रहे। पहले वो 'जांयट सैक्रेटरी' और सैक्रेटरी भी रहे और फिर 1936 में मृत्योपरांत राजपूत अमर सभा के जनरल, सैक्रेटरी भी रहे। उन्होंने क्षत्रिय इतिहास कमेटी के नाम से एक ऐतिहासिक संस्था भी स्थापित की और इसके रिकार्ड से पता चलता है कि उन्होंने एक 'हिस्टारिकल जनरल' चलाने की भी योजना बनाई थी। इसके अतिरिक्त वह हिन्दी भाषा के अच्छे कवि भी थे। उनकी कविताओं के कई उदाहरण उनकी पुस्तकों में भी मिलते हैं।

इतिहास लेखन के क्षेत्र में उन्होंने लगभग चालीस वर्ष तक काम किया। उनकी पहली पुस्तक "तारीख-ए-राजपुतान-मुल्के-पंजाब" 1912 ई. में छपी जिसके प्राक्कथन में वह लिखते हैं कि जैसे टॉड ने राजस्थान के क्षत्रियों पर लिखा है, वैसे ही वे भी जम्मू और पंजाब के राजपूतों पर काम करना चाहते हैं। पांच सौ बीस पृष्ठों के इस इतिहास में उन्होंने पुञ्छ से लेकर केहलूर और बिलासपुर तक के साठ राजपूत राजवंश और सामन्त कुलों का इतिहास लिखा है। इनमें से बिलावर बसोहली राज्य का पूरा इतिहास, दौ सौ इक्हतर पृष्ठों में दिया गया है। जिसमें सत्तर के लगभग सनदों, पट्टों, पत्रों और इकरारनामों को दर्ज किया गया है। शेष पुस्तक जोकि इस इतिहास का दूसरा भाग कहलाती है और दौ सौ पच्चीस पृष्ठों की है, इसमें लगभग साठ छोटे बड़े राजपूत कुलों का

वर्णन है। इनमें से पन्द्रह बीस कुलों का विस्तृत वर्णन है और उनके कुर्सीनामें भी दिए गए हैं, परन्तु शेष साधारण राजपूत कुलों का इतिहास केवल आध या एक पृष्ठ तक ही सीमित रखा गया है। लेखक ने स्वयं माना है कि पुस्तक के बहुत विस्तृत हो जाने के डर से बहुत से वंशों का वर्णन नहीं किया जा सका और बहुत से कुलों ने उसे अपनी जानकारी और रिकार्ड देने में सहयोग नहीं दिया। काहनसिंह की इस प्रथम ऐतिहासिक पुस्तक का अच्छा स्वागत हुआ और उन्होंने ऐतिहासिक खोज जारी रखने का निश्चय किया। अगामी पन्द्रह-सोलह वर्षों में उन्होंने एक और विस्तृत इतिहास लिख डाला जिसके दो भाग हैं। पहला भाग 1929 में लाहौर से छपा। जिसके एक सौ सतानवें पृष्ठ हैं। इसमें जम्मू-कश्मीर के डोगरा राजवंश का आरम्भ से लेकर महाराजा हरिसिंह जी के काल तक का वर्णन किया गया है। इसमें अग्नि गिर और जम्मू के संस्थापक जम्बूलोचन का भी विशेष वर्णन है। इतिहास के अतिरिक्त आरम्भ में लगभग चालीस पृष्ठों में जम्मू के भौगोलिक तथा 'डेओग्राफिक' परिस्थितियों का वर्णन है और तीर्थों, मुस्लिम ज़ियारतों, हिन्दु-देवताओं भाषाओं, जातियों और कबीलों की सूचियां भी दी गई हैं। यह परिचय भावी इतिहास वर्णन के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। अन्त में काहन सिंह ने छः पृष्ठों में ब्रजभाषा की उच्च कोटि के पदों में राजवंश की राजावलि लिखी है।

इसी इतिहास का दूसरा भाग जो दो सौ चौवन पृष्ठों का है, 'तारीख-ए-राजधाने-जम्वाल' के शीर्षक से लाहौर से ही 1931 में छपा। यह काहनसिंह की अन्तिम महान कृति है, जिसमें उन्होंने अपने समकालीन जम्वाल वंश के पच्चासी कुलों या शाखाओं का वर्णन किया है और उनके कुर्सीनामें भी दिए हैं।

इनके अतिरिक्त उनकी मुद्रित पुस्तकों में तीन नाम और हैं- पहली सवान-ए-उमरी-महाराजा रणवीर सिंह पच्चास-साठ पृष्ठ की एक छोटी पुस्तिका है। दूसरी, हिन्दी पदों में दस पृष्ठ की 'जन्म की बधाई' नाम से है जिसकी उन्होंने डा. कर्ण सिंह जी के जन्म पर 1931 में रचना की। यह उनके हिन्दी के उत्कृष्ट कवि होने का प्रमाण है। तीसरी, कुछ, पृष्ठों की एक पुस्तिका है जिसमें उन्होंने बाहुवाल और जसरोटिया राजाओं के भयंकर युद्ध का वर्णन किया है, जिसका कारण मियां नाथ की तलवार बताया जाता है। इसके विषय में एक लोकप्रिय 'बार' भी है।

दुर्भाग्य से ठाकुर काहनसिंह बलौरिया के रिकार्डस को उनके उत्तराधिकारी सम्भाल न सके और वह कीड़ों-मकोड़ों का भोजन बन नष्ट हो गये जो खस्ता हालत में देखने को मिले, उनमें केवल चार ऐतिहासिक शोधलेख मिले हैं,

जिनमें पहला 'ज़िक्र-ए-खानदान-सम्याल-राजपूत' है। दूसरा ज़िक्र-ए-खानदान-ए-बाहुवाला-जम्वाल है। तीसरे का नाम ज़िक्र-ए-खानदान-ए-जराल-राजपूत अर्थात कदीम राजधानी-ए-राजौरी है जिसके छब्बीस पृष्ठों में राजौरी के प्राचीन राजवंश के इतिहास का वर्णन है। चौथा लेख ''तारीख-ए-किश्तवाड़'' है, जिसमें छत्तीस पृष्ठों में किश्तताड़ का ऐतिहासिक और सामाजिक वर्णन है।

जैसा कि इतिहासकार ने अपने प्राक्कथनों में लिखा है कि उसने इतनी शोध-सामग्री इकट्ठी की थी कि जिससे और बृहद ग्रन्थ लिखे जा सकते थे। परन्तु उनका यह सारा संकलन अनदेखी के कारण नष्ट भ्रष्ट हो गया। यह सारी शोध सामग्री उन्होंने अनेकों स्रोतों के अध्ययन और संकलन से इकट्ठी की थी । उन्होंने बड़ी संख्या में मुद्रित हस्तलिखित ग्रन्थों का अध्ययन किया जो उन्हें संस्कृत फारसी, हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी में उपलब्ध हुए थे। यह कार्य उन्होंने बहुत धैर्य से किया। पहली दो पुस्तकों के लिए उन्होंने लगभग पन्द्रह वर्ष तक शोध कार्य किया और शेष दो पुस्तकों के लिए सत्रह वर्ष लगाए। अपने प्राक्क़थनों और टिप्पणियों में उन्होंने अनेकों ग्रन्थों का उल्लेख किया है। संस्कृत ग्रन्थों में महाभारत, वाल्मीकि तथा तुलसी रामायण और पुराणों में विशेषतया भागवत्, देवी भागवत् हरिवंश मार्कण्डेय शिव स्कन्द और पद्मपुराणों के अध्ययन का उल्लेख मिलता है। राजपूतों के इतिहासों में उन्होंने राजस्थान सम्बन्धी टॉड के ग्रन्थ, जी. एच. ओमा की हिस्ट्री आफ राजस्थान, पृथ्वीराज रासो, मारवाड़ का इतिहास, तारीखे-गण-अंग्रेजी, तारीखे-क्षत्रिय कुल थम्मन इत्यादि उनके अध्ययन में आए। उर्दू, हिन्दी में लिखे गए अब उपलब्ध स्थानीय इतिहासों का भी उन्होंने प्रयोग किया। इनसे तारीख-ए-रियास्त-हाए कोहिस्तान-ए-पन्जाल के चार भाग तारीख राजघराना-ए-मुल्के-पन्जाल, 'तारीख-ए-चम्बा', 'तारीख-ए राजघराने-ए ज़िला कांगड़ा', 'तारीख-ए-नूरपुर तथा सवान-ए-उमरी-महाराजा, गुलाब सिंह मुख्य हैं। सरदार हरदयाल सिंह की तारीख-ए रियास्त-हाए' और कहलूर राज्य के वजीर दीवान काहनचन्द कपूर की कृति तारीख-ए कहलूर की हस्तलिपियां भी उनके अध्ययन में आईं। वह फ़ारसी के अच्छे विद्वान थे इसलिए इस भाषा में रचित ग्रन्थों का उन्होंने विशेष उल्लेख किया है। जिनमें तारीख 'फरिश्ता', बका-ए-बाबर, शाहजहान-नामाह् सियरुल-मुताखरीन अमदत-उत-तवारीख, तबकात-ए-अकबरी और गुलाबनामा का उन्होंने विशेष उल्लेख किया है। राजतरंगिनी तथा चम्बा गज़िटियर और जरनल ऑफ पंजाब. पंजाब हिस्टॉरिकल सोसाईटी जैसे अंग्रेजी के स्रोतों को भी उन्होंने नहीं

छोड़ा। परन्तु विशेष महत्त्व के फारसी स्रोत गणेशदास की 'राजदर्शिनी' तहमास खान का 'तहमासनामा' और ''तारीख-ए-मुबारिक'' शाही जो जम्मू इतिहासकारों को स्रोत हैं, उन्हें उपलब्ध न हुए। पंजाब में लिखे गए फारसी के इतिहास भी शायद उन्हें न मिल सके, जिनमें जम्मू सम्बन्धी बहुत जानकारी उपलब्ध है, जिनमें बूटेशाह की तारीख-ए-पंजाब खुशवक्त राय द्वारा रचित तारीख-ए-सिख तथा मुफ्ती अली उद्दीन का 'इबरतनामा' विशेष उल्लेखनीय हैं। परन्तु इन स्रोतों की जानकारी न होते हुए भी ठाकुर काहन सिंह के प्रयत्नों में कोई भी त्रुटि नहीं आयी क्योंकि उन्होंने अनेकों डाक्यूमेंट्स और जानकार बुजर्गों के बयानों रिवायतों और मौखिक इतिहास को बड़ी मात्रा में एकत्रित किया था जिस कारण उनके विवरणों में कोई कमी न रही। इन स्रोतों की खोज में उन्होंने जम्मू हिमाचल और पंजाब की कई यात्राएं की। विस्तृत पत्र-व्यवहार किया और समयानुकूल अपने शोध कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न किया।

ठाकुर क़ाहन सिंह के इस घोर परिश्रम को विस्तृत मान्यता प्राप्त हुई उनकी 'तारीख-ए-राजपुताने-मुल्के-पंजाब' जो 1912 में छपी तत्कालीन पंजाब सरकार ने उसे सम्मानित किया और ईनाम दिया। जम्मू-कश्मीर सरकार ने भी इस पुस्तक पर उन्हें तीन सौ रुपए का विशेष ईनाम दिया था। 1929 में उनकी दूसरी पुस्तक 'राज घराना-ए-जम्मू-व-कश्मीर' छपी तो महाराजा प्रताप सिंह ने उन्हें खिल्लत और पांच सौ रुपए का ईनाम विशेष समारोह में दिया। उन्हें उनके ऐतिहासिक शोध और लेखन कार्य की प्रंशसा में पंजाब और जम्मू कश्मीर भर से सैंकड़ों पत्र मिले, जिनमें पंजाब युनिवर्सिटी लाहौर के कुलपति महोदय का भी प्रशस्ति पत्र था। पत्र-पत्रिकाओं भी उनकी पुस्तकों की चर्चा हुई। दिसम्बर 1929 ई० में लाहौर से छपने वाली पत्रिका 'कश्मीरी' तथा लाहौर से ही छपने वाली 'राजपूत गज़ट' में भी उनकी प्रशंसा में लेख प्रकाशित हुए। जम्मू से छपने वाली अखबार 'अमर' में भी इनके कार्य के मूल्यांकन छपे। हचिसन् फोगल ने हिस्ट्री ऑफ द पंजाब हिल स्टेटस' में ठाकुर काहनसिंह के शोध कार्य का बहुत प्रयोग किया और उन्होंने निम्नलिखित शब्दों में ठाकुर काहनसिंह के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है, ''ठाकुर काहनसिंह बलौरिया जो बलौरिया शाही खानदान से सम्बन्धित है, बसोहली का उर्दू में इतिहास हमारे लिए बसोहली इतिहास लिखने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। हम ठाकुर काहनसिंह के बहुत आभारी हैं कि उन्होंने डुग्गर की सामूहिक रियासतों पर विशिष्ट शोध कार्य किया जिसके लिए उन्हें सरकार की भी मान्यता प्राप्त हुई ।''

ठाकुर काहन सिंह का ऐतिहासिक अध्ययन विशेष तकनीक की सहायता से सम्पन्न हुआ। वह वास्तव में मात्र इतिहास नहीं था बल्कि इसे राजपूत कबीले की आत्म-कथा कहा जा सकता है जिसके लिए उन्हें विशेष पद्धति का सहारा लेना पड़ा। इसलिए विषय के अध्ययन में कई त्रुटियां भी देखने में आती हैं और कुछ उनकी अपनी मजबूरीयां और सीमाएं भी थीं तथा उस समय ऐतिहासिक खोज भी अभी परिपक्व न हुई थी। फिर भी ठाकुर काहनसिंह बलौरिया ने उपलब्ध स्त्रोतों के आधार पर ऐतिहासिक पुस्तकें लिख कर भारतीय और स्थानीय स्त्रोतों की प्रतिष्ठा को बढ़ाया और यह प्रमाणित किया कि इन स्त्रोतों की सहायता से प्रमाणित इतिहास सफलतापूर्वक लिखे जा सकते हैं। इनसे प्रेरित होकर जम्मू, कांगड़ा व पंजाब क्षेत्र में उर्दू, हिन्दी में कई इतिहासकारों ने स्थानीय इतिहास लिखे। यहां तक कि ''हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेटस'' पर भी काहनसिंह का विशेष प्रभाव देखने में आता है। इस प्रकार बीसवीं सदी के पांचवें-छठे दशक तक के इतिहास लेखन का युग ठाकुर काहनसिंह बलौरिया का युग ही माना जा सकता है। इस प्रकार वे अपने विशिष्ट ऐतिहासिक अन्वेषण एवं लेखन के लिये डुग्गर के ज्योतिस्तंभ माने गये हैं।

पं० केदारनाथ शास्त्री और उनका तौषी शतकम्

❒ *मनु श्रीवत्स*

जम्मू-कश्मीर राज्य के जम्मू संभाग में इस शताब्दी के उत्तरार्ध में जो छ: प्रसिद्ध आधुनिक संस्कृत कवि माने जाते हैं उनमें स्व० पं० केदारनाथ शास्त्री अन्यतम थे। अन्य पांच हैं- स्व० पं० शुकदेव शास्त्री, स्व० पं० काका राम शास्त्री, स्व० पं० जगन्नाथ शिष्ठ, डॉ० राम प्रताप तथा डॉ० प्रियतम चन्द्र शास्त्री।

पं० केदारनाथ शास्त्री का जन्म सन् 1893 ई० में जम्मू नगर के एक सम्मान्य ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा जम्मू के प्रसिद्ध रणवीर हाई स्कूल में हुई और उन्होंने बी. ए. तक जम्मू के प्रसिद्ध प्रिन्स ऑफ वेल्स कालेज में अध्ययन किया उन्होंने लाहौर विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में यह परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद संस्कृत भाषा के प्रति अपने अगाध प्रेम के कारण शास्त्री परीक्षा भी लाहौर विश्वविद्यालय से अच्छे अंक लेकर उत्तीर्ण कर ली।

विभिन्न भाषाएं सीखने के लिए गहन-लगन और अनुराग ने इन्हें संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी उर्दू और डोगरी भाषाओं में दक्ष बना दिया । विद्यार्थी जीवन में इनकी अनुशासन प्रियता, परिश्रमी स्वभाव और विनम्रता ने इन्हें सदा अपने अध्यापकों की कृपा का पात्र बनाए रखा। इनकी प्रतिभा का इनके सहपाठियों पर गहरा प्रभाव था।

संस्कृत और अंग्रेज़ी भाषाओं में इनकी विशेष योग्यता के कारण ही इन्हें भारत सरकार ने सन् १९२१ ई० में पुरातत्व विभाग के उत्तरी अनुभाग में सहायक निदेशक के रूप में नियुक्त कर दिया था। इस विभाग में कार्य करते हुए इन्होंने कई पुरातत्त्व खोजों और उत्खन्नों का नेतृत्व किया। इस के अतिरिक्त भी अपने उच्च अधिकारियों की ओर से इन्हें जो भी उत्तरदायित्व सौंपा गया इन्होंने उसे पूरी निष्ठा के साथ निभाया। परिणामत: इन्हें अपने अधिकारियों से सदा प्रशंसा और प्रोत्साहन ही मिलता रहा । सन् १९४१ ई० में जब ये सेवा मुक्त हुए तो उस समय यह केन्द्रीय सरकार के एशिया पुरातत्त्व संग्रहालय दिल्ली में उपनिदेशक पद पर कार्यरत थे।

सेवा मुक्त होने के बाद भी यह दिल्ली में रह कर अपना स्वाध्याय और लेखन कार्य करते रहे। तौषी शतकम् (संस्कृत) और डोगरी-निबन्धावली के अतिरिक्त इन्होंने अपनी शेष सभी कृतियों की रचना आपने दिल्ली के आवास काल के समय की। इनकी रचनाओं की सूची इस पकार है:-

1. तौषी शतकम् (संस्कृत लघुकाव्य)
2. डोगरी निबन्धावली (डोगरी भाषा में निबन्ध संग्रह)
3. सिन्धु संस्कृति समीक्षा (हिन्दी)
4. भारत की सांस्कृतिक परम्परा (हिन्दी)
5. सिन्धु सभ्यता का आदि केन्द्र हड़प्पा (हिन्दी)
6. Law on Indus civilization (English)
7. Indian Archaeology (with the collabration of Dr. V.S. Aggarwal) II Volumes इसका स्वयं किया हुआ अनुवाद-
8. 'भारतीय पुरातत्त्व'

मूल अंग्रेज़ी में रचित (अन्य लेखकों द्रारा) कृतियों का हिन्दी में अनुवाद :-

1. अजन्ता ।
2. एलोरा ।
3. श्रावस्ती।
4. नालन्दा ।
5. खजुराहों ।
6. राजगृह।
7. कुशीनर ।
8. सांची ।
9. कथा सरित्सागर भाग-I (डोगरी में)

जम्मू आते ही शास्त्री जी कई स्थानीय सामाजिक व साहित्यिक संस्थाओं के साथ जुड़ गए। तथा अपने स्वाध्याय एवं लेखन कार्य में भी यथावत् प्रवृत्त रहने लग पड़े। क्योंकि जम्मू नगर के मध्य से बहने वाली तौषी नदी, जिसे स्थानीय भाषा में तवी कहते हैं और पौराणिक साहित्य में उसे ताप्ती तथा सूर्य पुत्री आदि नामों से भी जाना जाता है, के साथ शास्त्री जी का बचपन से गहरा लगाव था, अत: अपने लेखन जीवन में पहुंच कर इन्होंने इसी नदी को अपनी रचना का विषय बनाया।

इनका 'तौषी शतकम्' नामक यह लघुकाव्य वस्तुत: एक स्तुति-काव्य है, क्योंकि इसमें न तो कोई क्रमबद्ध कथावस्तु है और न ही कवि ने इसकी मिथक

या ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि का ही विशेष उल्लेख किया है। हां, श्लोक संख्या १४ से लेकर १७ तथा २२ से २४ तक एवं श्लोक, संख्या ३८ इनमें तवी तट पर बसे जम्मू नगर को वसाने वाले मिथक राजा जांबूलोचन और तौषी के दूसरे तट पर बाहु नगर (जो अब विद्यमान नहीं है, वहां अब केवल एक दुर्ग अवशिष्ट है, जिस में महाकाली का प्रसिद्ध मन्दिर है) को बसाने वाले जाम्बूलोचन के भाई बाहुलोचन तथा उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में पंजाब की सिख सेना द्वारा जम्मू पर आक्रमण का उल्लेख किया है। अधिकांश श्लोकों में कवि ने मुक्तक पद्यों में केवल तौषी नदी की प्रशंसा ही की है। यदि कवि इस नदी के बारे में हमारे धार्मिक ग्रन्थों एवं कुछ पुराणों में (१) बिखरे सूत्रों को पकड़ कर उन्हें क्रमबद्ध करने का प्रयत्न करता तो इस कृति का महत्व और भी अधिक हो जाना सम्भव था।

इस कृति में कुल १०१ श्लोक हैं। सभी में केवल शार्दूल विक्रीड़ित छन्द का प्रयोग किया गया है। इन श्लोकों का क्रमशः अंग्रेजी और हिन्दी अनुवाद भी शास्त्री जी का स्वयं ही किया हुआ है। जैसा कि जम्मू-कश्मीर राज्य के तत्कालीन राज्यपाल डॉ० कर्ण सिंह द्वारा लिखी गई इसकी भूमिका की इन पांक्तियों से स्पष्ट हो जाता है–

"Shri Kedar Nath Shastri a prominent sanskrist scholar of Jammu, has brought out a Hundred Verses in praise of the 'Tawi' and is publishing them alongwith English and Hindi translations. I have pleasure in commending his devotion and literary skill." Unquote

यहां यह उल्लेखनीय है कि विष्णुधर्मोत्तर पुराण में जम्मू संभाग की प्रसिद्ध एवं विशाल नदी चन्द्रभागा, जिसे ऋग्वेद के नदी सूक्त में अस्विनी नाम से अभिहित किया गया है, के साथ तौषी नदी के संगम का बड़ा मनोहारी वर्णन किया गया है–

'चन्द्रभागा सरिच्छेष्टा यत्रशीतामलोदका।
महादेव जटाजूटे गङ्गा निपतिता पुरा ।।
चन्द्रेण भागतो न्यस्ता चन्द्रभागा स्मृता ततः।
शीतोष्णे- चादे के तस्मिन संगमे सुमनोहरे
तत्काल तप्त सलिला तौषी तत्रार्क नन्दिनी।।
तं संदेशं समासाध प्रतिवेश्यमसौद्विजः (१)

स्पष्ट है कि चन्द्रभागा 'शीतामलोदका' है, क्योंकि इसका सम्बन्ध चन्द्रमा से है, जबकि तौषी नदी 'तप्त सलिला है, अतः सूर्य के साथ सम्बन्धित है,

१. विष्णु धर्मेन्तर पुराण खण्डा अं. 162 श्लोक 35

इसीलिए इन दोनों के संगम स्थल के दोनों प्रकार के जल को 'शीतोष्णे-उदके' कह कर वर्णित किया गया है।

इस लघु स्तुति काव्य की भाषा और कवित्व में न तो दुरूहता है और न ही भाव-गाभीर्य है। इसमें कवि का दोष नहीं है, क्योंकि आम स्तुति-काव्यों में कवि को इसी शैली को अपनाना पड़ता है। इस कृति में अलंकारों का प्रयोग भी अत्यन्त सीमित संख्या में किया गया है और उनमें भी उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, समासोक्ति एवं अनुप्रास जैसे प्रसिद्ध अलंकारों को ही वरीयता दी गई है। उपमा अलङ्कार का एक उदाहरण इस श्लोक में द्रष्टव्य है-

''अस्योत्तुङ्ग विशालवक्षसि विभात्यानन्द संवर्धनी,
जम्बू नाम पुरी द्विगर्त महिम स्फीता पताकेव या।
प्रासा दैः सितसौध देव भवनै-राकाश सम्मेदिभिः।
साक्षाद्देव पुरी पिनाक नगरी वा स्पर्धमाना स्थिता ।। (२)

इसके अतिरिक्त 19, 30, 32, 39, 41, 43, 58, ७१, ७, ७७, ७८, ८२, १० श्लोकों में भी इसी अलंकार का प्रयोग मिलता है।

उत्प्रेक्षा अलंकार के प्रयोग का उदाहरण इस पद्य में अवलोकनीय है-

''उल्लङ्घ्यादि निदेशनं गुरु जनस्या ज्ञामुपेक्ष्यापचि,
त्यक्ताशेष विशेष लौकिक कथः संसार कार्यास्पृहः।
चिन्तातीत मनागृहीत इन ते ग्राहेण रागात्मना,
तौषि त्वच्चरणविन्द शरणं भेजेऽसकृत्प्रत्यहम् ।''[1]

इसके अतिरिक्त कवि ने पद्य ७ तथा ६२ में भी इस अलंकार का प्रयोग किया हुआ है।

इन श्लोकों से कवि की इस कृति की भाषा और शैली का परिचय बड़ी आसानी से लगाया जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि तौषी नदी के सन्दर्भ में कवि को जो-जो कुछ जब-जब भी स्मरण होता गया तब-तब ही उसके संवेदनशील हृदय के भाव कविता में परिणत होते गए। इसीलिए इस रचना में न कोई कथावस्तु है और न ही श्लोकों के क्रम की एक सूत्रता। यही कारण है कि कवि तौषी नदी के साथ अपने बचपन के सम्बन्धों को अपनी कल्पना का पुल देकर उसी नदी के प्रति अपना अनुराग इस प्रकार प्रकट करता है-

''ईसा विंश शताब्दिका समुदये बालो यदाहं तदा,
तौषी पूर्ण पयः प्रवाह महिमाऽधस्तादिगरेः प्रवाहत्।
तस्या दिव्य गुणैः प्रभावित मनास्तद्दर्श नोत्कण्ठितः
स्नानामोद कृते समं सहचरैर्भेजेऽन्वहं तत्तटम्॥ (३)''

---

२. तौषी शतकम्-१० ।

(१) तौषी शतकम्-१० (२) वही-६२ (३) वही-(६१) (४) वही ६३-६४।

इसी प्रकार कवि अपने बचपन के दिनों में तौषी नदी के तट पर अपनी बालसुलभ क्रीड़ाओं एवं चेष्टाओं का वर्णन करता हुआ अगले दो श्लोकों में भी करता है।

एक स्तुति काव्य होने के कारण यद्यपि 'तौषीशतकम् का प्रधान रस शान्त है तो भी कवि ने प्रसङ्गानुसार कुछ स्थलों पर वीभत्स, भयानक और वीर रसों का भी प्रयोग किया हुआ है। ऐसे प्रयोग जम्मू नगर से बह कर तौषी नदी में मिलने वाली गंदगी, कंडी प्रदेश में होने वाले सांप, बिच्छु और कनखजूरे तथा कंडी प्रदेश के वीर लोगों के संदर्भ में किये गए हैं ।[१]

क्योंकि कविशास्त्री स्वयं एक कुशल पुरातत्त्व वेत्ता भी थे, अत: उन्होंने एक स्थान पर तौषी नदी के तटवर्ती प्रदेश से पुरत्तत्व विभाग की ओर से की गई खुदाई से प्राप्त मेंमम्थन नामक हाथी की अस्थिओं का उल्लेख एक श्लोक में करके इस तथ्य का संकेत दिया है कि ''तौषी नदी'' के तटीय भूखण्डों में कभी प्रागैतिहासिक काल जीवन विद्यमान था।[२]

जैसे कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि कवि शास्त्री ने ''तौषी शतकम्'' नामक इस स्तुति काव्य के स्वरचित श्लोकों का स्वयं ही अंग्रेज़ी में और स्वयं ही हिन्दी में भी अनुवाद किया है। इनमें अंग्रेज़ी अनुवाद अधिकांश पद्यबद्ध होने से कवि का अंग्रेज़ी भाषा पर पर्याप्त अधिकार का परिचय देता है। इस विषय में यह उदाहरण विचारणीय है–

तौषी सर्वहितैषिणी तनुभृतां मातेव सन्तर्पणी,
जम्बू पीठ गिरिं स्वशुभ्र वपुषा संवेष्ट्य कान्चीवया।
त्यक्त्वा पार्वतिक प्रदेशमसमं प्रोच्चावचं निष्ठुरम् ।
प्राप्ता देशमबाध मासमतलं सौम्यं श्रमस्यान्तकम् ।।

अंग्रेज़ी अनुवाद–

Kind as mother to all. taushi. like a vital nerve. Girdles Jammu Hill with a lovely sweeping curve Passing through ordeal of tedious upland journey. She feels Jubilant at end of tailsome tourney.

''तौषी शतकम्'' के श्लोकों के स्वयं शास्त्री जी द्वारा किये गए अंग्रेज़ी और हिन्दी अनुवादों में कहीं-कहीं तालमेल एवं विषय के अनुसार एकरूपता न होने के कारण हमें कभी-कभी यह सन्देह करने के लिए विवश होना पड़ता है कि ये अनुवाद कहीं किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा तो/ नहीं किये गये । इस विषय में निम्नांकित एक श्लोक इसके दोनों अनुवादों के साथ विचारणीय है :-

---

१. वही ६२ २. वही ६१ ३. वही ६३-६४

४. तो० श० ३४, ३६, ३४ ३७ ५. वही ४२ ।

''अस्त्येकंच कथानकं सुरूचिरं चित्र पुराणोदि ।
तौषी चन्द्रसमागमेऽतिमहिते पुण्ये पवित्रे स्थलं ।
कश्चित् प्राक्तन पापजन्य दुरिताद् वेताल योनि गतः ।
पापिष्ठापसदः सदा परिचरै र्वेताल सङ्घैवृत ।।[१]

अंग्रेजी अनुवाद :–

A Puranic legend relates quite a funny miracle. To edify the spot where meet two rivers fickle. Here at confluence of chandra and toushi twins. Lived a uhnhappy vetala. chief of meary goblins.

हिन्दी अनुवाद :–

पुराण में कथानक आता है कि जन्मान्तर के पापकर्मों के परिपाक से पाप योनि को प्राप्त कोई पिशाच उसी प्रकार पाप–योनि को प्राप्त अपने परिवार के अनेक पिशाचों से परिवत था।[2]

इन दोनों अनुवादों में आपसी एकरूपता का अभाव स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

ऊपर किये गए सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्व० केदारनाथ शास्त्री द्वारा रचित यह लघुस्तुतिकाव्य बावजूद कुछ नगण्य त्रुटियों के जहां आधुनिक संस्कृत के काव्य साहित्य की भी वृद्धि करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है, वहां जम्मू–कश्मीर राज्य के जम्मू संभाग का सम्मान बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध होता है। निःसंदेह ऐसे विशिष्ट विद्वान का रचनात्मक योगदान भावी पीढ़ियों के लिये प्रकाश किरण के समान है ।

---

१. तौ० श० १९
२ वहीं २२ ।

कुदरतुल्ला शहाब

❑ *धर्मचन्द्र प्रशान्त*

'प्रिंस ऑफ वेल्ज़' (वर्तमान गांधी मेमोरियल) कालेज में सन् 1932-36 में साईंस की क्लास में एक छोटे से कद का ज़रा सांवले रंग का एक विद्यार्थी पढ़ता था, नाम था कुरतुल्ला शहाब । प्रोफेसर या उसके सहपाठियों में से किसी ने भी यह कभी सोचा न था कि किसी समय वह लड़का एक दीप्त नक्षत्र बनेगा। आई. सी. एस, परीक्षा पास करने वाला वह पहला और आखिरी छात्र था। उस समय आई. सी. एस. पास करने की बात कोई यहां सोच भी नहीं सकता था।

कुदरतुल्ला के पिता अब्दुल शहाब तालाब खटीकां के पास के रहने वाले थे। वह सरकारी नौकरी में उन्नति करते-करते वज़ीर वज़ारत बन गये थे।

कुदरतुल्ला की ओर उनके पिता का ध्यान अधिक था क्योंकि वह पढ़ने में होशियार थे। उन्होंने दसवीं कक्षा पास करके कालेज में प्रवेश ले लिया। दसवीं उन्होंने प्रथम श्रेणी में पास की । कालेज में उन्होंने 'तवी' पत्रिका के उर्दू तथा अंग्रेज़ी विभाग में लेख लिखना शुरू किया, जिनको पढ़ कर ऐसा प्रतीत होता कि जैसे वे किसी बड़े लेखक की रचनाएं हों। इसलिये वह अंग्रेज़ी विभाग के सम्पादक भी बना दिये गये। उन्होंने अंग्रेज़ी विभाग को बहुत उन्नत किया और संवारा। उस समय कालेज की डिबेटिंग सोसाईटी का सैक्रेटरी बनना आसान बात नहीं थी। इसके लिये प्रतियोगिता हुई, प्रतियोगी थे इसहाक कुरेशी। वह भी कोई कम न थे। शहाब जीत गये। डिबेटिंग सोसाईटी की सैक्रेटरी तथा 'तवी' का सम्पादक होना बड़े महत्त्व की बात थी।

उन्होंने उर्दू विभाग को चार चांद लगा दिये और अंग्रेज़ी के मशहूर और बड़े कवि 'शैले' की कविता 'ओड टू वेस्ट विंड' का उर्दू में अनुवाद किया। जो मौलिक रचना ही समझी गई। इस तरह उन्होंने अंग्रेज़ी में भी कविताएं लिखीं। इसलिये कालेज के विद्यार्थियों में उनका बड़ा आदर सम्मान बढ़ गया । उसके पास बैठ कर सभी खुशी अनुभव करते थे। वह स्वभाव से बड़े सरल मिलनसार तथा सामाजिक युवक थे।

धर्म-निरपेक्षता के लिये तो क़ुदरतुल्ला सबके लिये एक मिसाल थे। उन्होंने कभी भी जातिवाद की बात नहीं की और न ही इसको वह उचित मानते थे। शैले की कविता का अनुवाद 'बादे गरब' किया परन्तु जब कविता 'तवी' में छपी तो 'गरब' की जगह 'अरब' छप गया। यह देखकर शहाब को क्रोध आ गया । उन्होंने कातिब को डांटा–आप लोगों को हर जगह अरब ही दिखता है।

क़ुदरतुल्ला की प्रतिभा तब दृष्टिगोचर हुई जब उनका एक लेख विश्व प्रतियोगिता में प्रथम रहा। एक विज्ञापन लाहौर के अंग्रेज़ी अखबार 'सिविल एंड मिल्टरी गज़ट' में छपा जो लंदन की साहित्यिक संस्था ने निबंध प्रतियोगिता के लिये दिया था। यह प्रतियोगिता केवल विद्यार्थियों के लिये थी। सभी ने शहाब को निबंध लिखने के लिये कहा। पहले तो उन्होंने कोई उत्साह नहीं दर्शाया परन्तु दूसरे दिन अपने साथियों से कहा......''मेरा मन मान गया है ।'' निबन्ध लिखा। उसे सुनाया भी। सभी ने कहा कि वैसा निबन्ध कोई लिख ही नहीं सकता। निबन्ध भेज दिया गया । हर विद्यार्थी के आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा कि सारे संसार भर के निबन्धों में शहाब का निबन्ध प्रथम रहा ।

बोर्ड के चेयरमैन ''आर्च बिश-अप आफ़ कैंटेरवरी'' ने शहाब को लिखा, ''मेरे बच्चे, तुम्हें बधाई देते हुए मुझे खुशी हो रही है कि तुम्हारा निबन्ध संसार के आठ सौ निबन्धों में प्रथम आया है ।'' उन्होंने पत्र में लिखा, ''इस के लिये ईनाम सोने का तमगा है, वह तुम्हें भेज दिया जाएगा। अपनी तस्वीर मुझे भेजो, मैं अपने ड्राईंगरूम में रखूंगा। मेरा पत्र अपने प्रिंसीपल को दिखाना। वह तुम्हारी तस्वीर कालेज के हाल में लगाएंगे ।'' उस समय कालेज के प्रिंसीपल थे एस० आर० सूरी । उन्होंने तस्वीर हाल में टांग दी। वह आज भी टंगी हुई है।

क़ुदरतुल्ला ने सन् 1936 में बी. एस. सी. बहुत ही अच्छे अंकों में पास की। उसके पश्चात् उन्होंने कई लेख 'सिविल ऐंड मिल्टरी गज़ट' में छपवाए । उनको सलाह दी गई कि वह आई. सी. एस. की परीक्षा दें। उन्होंने तैयारी शुरू कर दी। दो वर्ष लगे। प्रतियोगिता में हज़ारों परीक्षार्थी थे। उनको सफलता मिली। यह परीक्षा जम्मू से न पहले किसी ने पास की न बाद में। उनके पिता अब्दुल्ला शहाब को बधाइयां मिलने लगीं। सभी कहते कि उनके बेटे ने जम्मू का नाम रौशन कर दिया।

क़ुदरतुल्ला पढ़ाई की ट्रेनिंग के लिये लंदन गये। वहां उन्होंने पूरे तीन वर्ष लगाए तथा भारत लौटने पर उनको बिहार में कलक्टर नियुक्त किया गया। देश के विभाजन के समय वह पटना में थे। उनकी चर्चा सारे बिहार में छा गयी। वह

पूरा इन्साफ करते थे। कभी किसी के साथ बेरुखी नहीं दर्शाई । वहां जिस समय फुर्सत मिलती तो लिखने का काम करते। चार पुस्तकें उर्दू में तथा पांच अंग्रेज़ी में लिखीं।

पाकिस्तान बना परन्तु उन्होंने भारत में ही रहने का निश्चय किया था लेकिन उत्तर प्रदेश, बिहार तथा जम्मू में जो फिरकापरस्ती के झगड़े मार-काट हुई, उससे उनका विचार बदला। वह पाकिस्तान के जनरल अयूब खां के पी० ए० के पश्चात् शिक्षा सचिव बने तथा उसी पर रिटायर्ड हुए।

उन्होंने कोई सत्तर पुस्तकें लिखीं उर्दू और अंग्रेज़ी में। जो कई विश्वविद्यालयों तथा कालेजों में पढ़ाई जाती हैं पर उनकी लिखी पुस्तकों की सूची उपलब्ध नहीं है। उनके बी. बी. सी. पर प्रसारण हुए। कुदरतुल्ला पाकिस्तान में भी जम्मू को नहीं भूले। वह अपने लेखों में जम्मू को जन्म भूमि कहते थे। कराची रेडियो पर से उनकी एक तकरीर प्रसारित हुई। मैंने अचानक ही सुनी। जम्मू शहर की सुन्दरता का उन्होंने इस तरह बयान किया कि जैसे यह जन्नत हो। रात के समय लोग स्यालकोट से आते। गाड़ी में बैठे हुए बिजली के बल्बों की रौशनी और रणबीर नहर का गर्मियों में खूबसूरत दृश्य । स्यालकोट से आम तथा दूध की बोतलें फैंक कर खाने तथा पीने का आनंद लेते । यह सब शहाब को याद था।

वह लंदन जाते रहते थे। जम्मू से यदि कोई उनको मिलता तो कहते–मुझे तो जम्मू ही मिल गया। लंदन में उनको पदमा सचदेव मिली जिस समय उन्होंने बताया क़ि वह जम्मू से हैं तो वह कितने खुश हुए। यह पदमा ही जानती हैं।

पुस्तकें लिखने के अलावा उन्होंने अनगिनत लेख भी लिखे। एक लेख मुझे उर्दू के एक रिसाले में छपा हुआ पढ़ने को मिला। वह उन्होंने अपनी मां पर लिखा था। परन्तु उसमें महारानी चाड़क का भी ज़िक्र किया गया था । उन्होंने महारानी की बहुत प्रशंसा की हुई थी। एक घटना भी लिखी हुई थी। वह यह कि अब्दुल्ला शहाब के काम से खुश होकर महाराजा प्रताप सिंह ने उनको बजारत से ऊपर गवर्नर बना दिया। शहाब उस समय गिलगित्त के वज़ीर वजारत थे। गवर्नर बनने पर उनको स्कर्दू तथा लद्दाख जाना पड़ता । उसमें महीनों लग जाते । उनकी बेगम बच्चों के साथ अकेली रहती । अकेले समय बिताना कठिन था। वह पति से पूछती–यह क्या आप चार-चार महीने गायब रहते हैं। मुझे बड़ा घबराहट होती है। शहाब कहते–"मैं क्या करूं ? महाराज ने मेरे पीछे गवर्नरी लगा दी है, वही मुझे दूर ले जाती है।"

बेगम पूछती–"कहीं यह कोई औरत तो नहीं ? शहाब मज़ाकिया अधिक थे। वह कहते–और क्या ! औरत ही तो है ।"

कुदरतुल्ला ने लिखा है–मेरी मां बड़ी सीधी थी। बिल्कुल फ़कीर तथा महात्मा। वह भी मान गई। वह कहतीं अच्छा मैं भी जम्मू जाऊंगी। महारानी चाड़क से कहूंगी कि इस औरत से पीछा छुड़ा दें। शहाब ठहाका लगा कर बोले 'अच्छा' ! उस बार वह बेगम को श्रीनगर ले गए। वह महारानी से मिली। महारानी चाड़क ने पूछा–"आपको कोई तकलीफ तो नहीं दूर-दराज़ इलाके में। बेगम ने हाथ जोड़ कर कहा–"महारानी मुझे एक ही तकलीफ है। महाराजा ने मेरे पति के पल्लू से कोई गवर्नरी नाम की औरत बांध दी है। वह चार-चार महीने घर नहीं आने देती। महारानी हँस पड़ी। उन्होंने कहा–"बेगम आप बड़ी भोली हैं। गवर्नरी बड़ा औहदा है। बेगम ने कहा-कुछ भी हो, इससे जान छुड़ाओ । महारानी को बेगम पर बड़ी दया आई। उन्होंने कहा–अच्छा मैं महाराजा साहिब से बात करूंगी। उन्होंने महाराज साहिब को कह दिया। तो वह बड़े हैरान हुए तथा बोले–"यह क्या, सिफारशें तरक्की के लिये की जाती हैं परन्तु आप शहाब को नीचे उतार रही हैं। महारानी ने बेगम का दुखड़ा सुनाया । वह मान तो गए परन्तु उन्होंने अब्दुल्ला साहब को पूछना मुनासब समझा। उन्होंने शहाब को बुला भेजा तथा कहा–"आपकी बेगम आप को फिर से वज़ीर बनाना चाहती है। आपकी क्या राय है।" शहाब हँस पड़े। उन्होंने कहा–"सरकार, वह जो कुछ भी कहती है, मुझे मंज़ूर है।"

फिर क्या था। शहाब फिर से वज़ीर बन गए। दूसरे दिन बेगम महारानी के पास गईं तथा कहा–महारानी! आप ने मेरे पर जो उपकार किया है अल्लाह आपको इसका फल देगा। आपको पुत्र मिलेगा तथा गोद हरी हो जाएगी ।

कुदरतुल्ला लिखते हैं–

'सचमुच महारानी गर्भवती हो गईं, महीने के अंदर उन्होंने सभी को बताया यह बेगम शहाब की दुआ का ही फल है। उस वर्ष महारानी सर्दियों में श्रीनगर ही रहीं। शहज़ादे ने वहीं जन्म लिया। महारानी बेगम को पोशाकें तथा सौगातें भेजती रहीं। महारानी चाड़क पर लिखी मेरा पुस्तक भी उनकी ही प्रेरणा है।

अनु. शशि पठानिया

बलदेवशाह ठप्पा

□ *शिव 'निर्मोही'*

जब भी हम किसी शाह का नाम सुनते हैं तो ऐसा लगता कि वह अवश्य ही निर्धनों का शोषक और धनाढ्य व्यक्ति होगा। उसकी एक बड़ी हवेली रही होगी और वह ठाठ-बाठ का जीवन जीता होगा। किन्तु डुग्गर में ऐसे शाह भी हुए हैं। जिन्होंने व्यापार से धन तो अर्जित किया किन्तु उस का उपयोग अपने परिवार के लिए नहीं अपितु समाज कल्याण के लिए किया, बलदेवशाह ठप्पा भी ऐसे ही शाह थे ।

बलदेव शाह ठप्पा का जन्म पैंथल गांव में वि० सम्वत् 1935 तदानुसार 1879 ई० को कन्हैया के घर में हुआ। कन्हैया पुरोहिताई का काम करते थे। वे सदोतरा शाखा के ब्राह्मणों के पुरोहित थे। उन के यजमान पैंथल के अतिरिक्त कटड़ा, उधमपुर और खतरैड़ी आदि गांवों में रहते थे। उन्हें अपने यजमानों के घरों से जो दान दक्षिणा मिलती उसी से वे अपनी आजीविका चलाते थे। कन्हैया के पूर्वज दो-सौ वर्ष पहले मुट्ठी पलहौड़ा में रहते थे । किन्तु सिक्ख मिसलों के सरदारों ने राजा वृजराजदेव के शासन काल में जब जम्मू क्षेत्र पर बार-बार आक्रमण किए तो जम्मू के आस-पास के कई गांवों के लोग अपने-अपने गांवों से पलायन करके त्रिकूटा पहाड़ की ओर आ बसे। मुट्ठी के सदोतरा ब्राह्मणों की एक शाखा ने जब भी सिक्खों के आक्रमणों से तंग आकर जब अपना गांव छोड़ा तो कन्हैया के पूर्वजों ने अपने यजमानों का साथ दिया और वे भी उनके साथ आ गए।

मुट्ठी से पलायन करके आए कुछ सदोतरा परिवार पैंथल में बस गए अतः कन्हैया के पूर्वज भी पैंथल में आ बसे। इन्हें पैंथल गांव के मध्य में थोड़ी सी ज़मीन मिली और उसमें उन्होंने एक छोटा सा कच्चा मकान बनाया। कन्हैया को अपने पूर्वजों से उतराधिकार में जिन गांव में पुरोहिताई मिलती थी। वे तीज त्योहार पर अपने यजमानों के घर जाते और उन से जो अन्न और धन मिलता उस से अपने परिवार का पोषण करते । कन्हैया के चार पुत्र पैदा हुए जिन के नाम नन्द लाल, बलदेव, कृष्ण लाल और वासुदेव थे। अति निर्धनता के कारण

वे अपने बच्चों का ठीक ढंग से पालन पोषण न कर सके और न ही उन्हें पढ़ा सके। उन का बड़ा लड़का नन्द लाल घर की दरिद्रता से तंग आकर साधु बन कर घर से निकल गया । शेष तीनों बेटे बहुत छोटे थे, अत: वे घर में ही रहे।

कन्हैया ने एक बार आवश्यकता पड़ने पर गांव के साहुकार गोपी शाह से अस्सी रुपये उधार लिए थे। गोपी शाह अपने रुपयों का तकाज़ा कन्हैया से प्राय: करता रहता था किन्तु कन्हैया अक्सर उसे टाल देता । किन्तु एक दिन गोपी शाह सुबह-सुबह ही इन के घर आ गया और कर्ज़ के रुपये लौटाने का तकाज़ा करने लगा। कन्हैया ने इस बार भी गोपी शाह की मिन्नत समाजत की कि वह बहुत शीघ्र उस का हिसाब चुकता कर देगा। किन्तु इस बार गोपी शाह न माना। उसने ज़ोर देकर कहा कि आज वह रुपये लेकर ही जाएगा। घर में गोपी शाह को देने के लिए कुछ था नहीं अत: गोपी शाह ने कन्हैया का पड़ोसियों के सामने अपमान किया जिसे कन्हैया का मंझला पुत्र बलदेव सहन नहीं कर सका। उसने शाह से कहा कि वह उसके पिता को केवल एक महीना भर की मोहलत दे, हम हिसाब, चुकता कर देंगे। गोपी शाह ने कहा-''ठीक है, ठीक है, मैं एक महीना और प्रतीक्षा कर लेता हूं, यदि महीने के बाद भी मुझे रुपये न मिले तो मैं सरे बाज़ार कन्हैया पर चक्का चढ़ाऊंगा। गोपी शाह तो धमकी देकर चला गया किन्तु कन्हैया इस दिन चैन से एक क्षण भी न बैठा और न सो सका। उन दिनों पहाड़ी इलाके में चक्का चढ़ाना बहुत ही लज्जा तक बात मानी जाती थी। जो कर्ज़दार शाह का कर्ज़ा चुकता न करता शाह उसे घसीटता हुआ गांव की चौपाल में खड़ा करता । जब वह कान पकड़ लेता तो साहुकार पहले उस की पीठ पर चौड़ा सा पत्थर रखता और फिर उस चौड़े पत्थर के ऊपर चालीस पच्चास किलो वज़न का पत्थर चढ़ाता । कर्ज़दार जब पीड़ा से चिल्लाता तो साहुकार उसे गालियां निकालता और प्रताड़ित करता था। चक्का चढ़ाने का दृश्य देखने सारा गांव आता। किशोर बलदेव ने भी गांव में शाह को चक्का चढ़ाते देखा था, अत: वह नहीं चाहता था कि उसके बाप पर भी चक्का चढ़ाया जाए। अत: कर्ज़ के रुपये चुकता करने के लिए वह भी चिन्तित हो उठा ।''

किशोर, बलदेव की आयु उस समय ग्यारह वर्ष की थी। उसके पास सात रुपये थे। वे रुपये उसने पैंथल गांव में आयोजित दंगल के मेले में मनिहारी की वस्तुएं बेच कर बचाये थे। उसने उन सात रुपयों की और मनिहारी खरीदी और दूसरे दिन गांव के एक दो लड़कों के साथ बेचने बम्हाग के इलाके में चला गया। उस का सौदा तीसरे ही दिन बिक गया। उसने सात रुपये में लगायी त्रिमात पन्द्रह रुपये में बेची और पन्द्रह रुपये मूल्य का पहाड़ी माल खरीद कर

उधमपुर में पच्चीस रुपये में बेचा । इस से उस का उत्साह बढ़ा। दूसरी बार उसने पच्चीस रुपये का सामान खरीदा पहाड़ में बेचा और वहां से पहाड़ी सामान खरीद कर बाज़ार में बेचा। इस प्रकार एक महीने के भीतर ही उसने अस्सी रुपये कमा कर अपने पिता की हथेली पर रखे। बलदेव शाह के पिता कन्हैया ने बलदेव को अपने साथ लिया और गोपी शाह के घर जाकर उसका कर्जा चुकता कर दिया। गोपी शाह ने रुपये अपनी तिजौरी में रखने के बाद कहा–'मुझे सच बताओ ये रुपये तुम्हें कहां से मिले ? कहीं किसी के घर चोरी तो नहीं की ?' बलदेव ने शाह को मनिहारी और पहाड़ी माल के क्रय और विक्रय की बात बताई तो शाह ने आश्चर्य से अपनी उंगली दान्तों में दबा ली। उसे ऐसा आभास हुआ कि यह किशोर उस से भी ऊंचा उठ सकता है। शाह ने बलदेव की पीठ थपथपाई और उसे पुरस्कार में एक रुपया ईनाम दिया।

शाह के ऋ़ण मुक्त होने के बाद किशोर बलदेव ने सोचा कि समाज में प्रतिष्ठा उसी की होती है जो धनाढ्य है। उस से समाज डरता है और वह समाज पर शासन करता है। अत: किशोर बलदेव ने अपने मन में धनाढ्य व्यक्ति बनने का स्वप्न संजोया और फेरी लगाने का काम आरम्भ किया। ग्यारह वर्ष का बच्चा आखिर कितना बोझ उठा सकता था। फिर भी जितना सम्भव होता वह सिर पर फेरी का सामान उठाता और बम्हाग के गांव-गांव में घूमता। अपनी वस्तुएं बेच कर वह रुपये लेने की बजाय ग्राहक से पहाड़ी-माल लेता। इस प्रकार उसे दोगुना लाभ पहुंचता । एक दो वर्ष के भीतर ही उसके घर की आर्थिक स्थिति सुधर गई।

उन दिनों लड़के और लड़कियों के विवाह छोटी ही आयु में होते थे। एक बार वे क्रिमची के मार्ग से पहाड़ की ओर जा रहे थे तो उस गांव के एक मगोत्रा शाह की दृष्टि इन पर पड़ गई। उन्होंने इस से व्यापार से सम्बन्धित कुछ प्रश्न पूछे जिस की इन्होंने सन्तोषजनक उत्तर दिया। मगोत्रा शाह इन पर अति प्रसन्न हुए और उन्होंने अपनी कन्या का विवाह इन से कर दिया। इन्हें तीन सन्तानें प्राप्त हुईं एक लड़का रामसरन और दो लड़कियां हुक्मी देवी और गोदावरी ।

विवाह के पश्चात् इन पर आर्थिक बोझ बढ़ा। इन्होंने सोचा कि महीने में बम्हाग के तीन चार चक्कर लगाने के बाद जो धन बचता है, वह पर्याप्त नहीं है, अत: क्षेत्र बदल लेना चाहिए।

एक दिन इन्होंने फेरी की गठरी सिर पर उठाई और सलाल की ओर चले गए। वहां काम न चला तो चन्द्र भागा नदी पार की और अरनास के इलाके में

जा पहुंचे। वहां इन का काम चल पड़ा। अरनास से दस किलोमीटर दूरी पर स्थित पहाड़ी गांव शुरू में एक जैलदार के घर इन्होंने डेरा जमा लिया और छोटा-मोटा व्यापार करना शुरू किया।

जैलदार की एक बेटी थी। उस का नाम सुख्मों देवी था। वह अति सुन्दर और भरपूर यौवन संपन्न थी । बाल्यावस्था में उसका विवाह पुन्नु नाम एक किशोर से हुआ था । किन्तु सुख्मू को अपना पति और ससुराल पसंद नहीं था, अत: वह अपने मायके में ही रहती थी।

बलदेव जब जैलदार के घर रहने लगे तो सुख्मू इन की ओर आकर्षित होने लगी। वही इन का खाना तैयार करती और इन की प्रत्येक आवश्यकता का ध्यान रखती । बलदेव भी सुख्मू के प्रति आकर्षित हो गये। और एक दिन इन्होंने सुख्मू से अपने मन की बात कह दी। बात जैलदार के कानों में भी पहुंची। विवाहिता सुख्मू के साथ इन का विवाह तब तक सम्भव नहीं था जब तक सुख्मू का पहला पति मन्नु उस का परित्याग न कर देता। अन्त: बलदेव पुन्नु के पास स्वयं गए और उस क्षेत्र में प्रचलित मालिया प्रथा के अन्तर्गत पुन्नु को पर्याप्त धन दिया और पुन्नु ने सुख्मू का परित्याग कर दिया। पहाड़ों में मालिया एक ऐसी प्रथा है जिस के अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति किसी विवाहित महिला के पति को उस की कीमत चुकता करके महिला को पत्नी रूप में प्राप्त कर सकता है। सुख्मू देवी को बलदेव ने जब अपनी पत्नी बनाया तो उसके भाग्य ने भी पलटा खाया। सुख्मू के पास पर्याप्त धन था, आभूषण थे, पशु थे। उसने अपना सर्वस्व इन्हें सौंप दिया। इन्होंने सुख्मू से मिला धन भी व्यापार में लगा दिया। कुछ ही दिनों के भीतर इन का व्यापार चल पड़ा और एक व्यापारी के रूप में इन की प्रसिद्धी पूरे क्षेत्र में होने लगी। इन्होंने शुरू में संयोग गांव में ही अपनी दुकानें खोलीं। वहां डेढ़ सौ एकड़ ज़मीन खरीदी और अपने रहने के लिए मकान बनवाए। इन की दुकान में दो मुनीम दस नौकर काम करने लगे। इन्होंने सामान की ढुलाई के लिए बारह खच्चरें खरीदीं और उन की देख-भाल के लिए इतने ही और कर्मचारी नियुक्त किये। थोड़े ही समय में इन का व्यापार पहले से भी ज्यादा म्हौर और गूल-गुलाब गढ़ तक फैल गया। इन्होंने अपने केन्द्र चल्लद, शनोग, हाड़ी आला, कर्म-कण्डा, सुचर दरमाड़, मसलोत, पट्टियां आदि गांवों में भी खोले और घी, अनारदाना, बनक़्शा, अखरोट और लाल मिर्च की खरीद शुरू कर दी। इन्होंने पहाड़ी माल जम्मू-अमृतसर और लाहौर की मंडियों में भेजना आरम्भ किया जिस से इन्हें लाखों रुपयों का लाभ पहुंचा। व्यापारियों में इन का नाम चमका और सभी इन्हें बलदेव शाह ठप्पा के नाम से जानने लगे।

बलदेव शाह ठप्पा ने शुरू में अपने रहने के लिए एक बहुत बड़ा मकान बनाया जो चार कनाल भूमि में परिसीमित था। उन्होंने सुख्मू के लिए एक अलग मकान बनाया। सुख्मू से इन के घर तीन लड़कियां-पावर्ती, भगवती और ईशर देई हुई, सुख्मू राजपूत परिवार की लड़की थी, अतः सुख्मू की तीनों बेटियों के विवाह इन्होंने राजपूत लड़कों से ही किए।

लोक कल्याण के कार्य

बलदेव शाह ठप्पा एक बार अपने परिजनों से मिलने के लिए पैंथल गांव में आए। अपने एक मित्र से मिलने के लिए धिरती गांव में गए। यह गांव पैंथल से पांच किलोमीटर की दूरी पर दक्षिण में स्थित है। मित्र ने इन की बहुत आव-भगत की और खाना खाने के लिए आमंत्रित किया । इन्होंने कहा कि मैं स्नान किए बिना खाना नहीं खाता हूं अतः पहले मेरे स्नान के लिए पानी का प्रबन्ध करो। मित्र ने इन्हें जब यह बताया कि पीने का पानी लेने हम तीन किलोमीटर दूर झज्झर नदी में जाते हैं और वहीं नहा आते हैं, अतः घर में स्नान के लिए पानी नहीं है। इन्हें मित्र की बात सुनकर बहुत दुःख हुआ और बिना खाना खाए ही वे अपने घर की ओर चल पड़े। गर्मी के दिन थे। पशु भी प्यास के कारण हांफ रहे थे। तालाब सूखे पड़े थे। इन्हें भी मार्ग में पीने के लिये पानी न मिला। इन्होंने मन ही मन सोचा कि मेरे पास लाखों रुपये हैं, सोने-चांदी से कई पेटियां भरी पड़ी हैं। व्यापार अच्छा चल रहा है। क्यों न मैं अपने धन से इस प्यासी धरती को जल से तृप्त करूं? वे चलते-चलते कांवल डंगा में तेज राम की दुकान तक आए। तेज राम हलवाई की दुकान करता था । वह एक छबील भी चलाता था। बलदेव शाह ने तेज राम की छबील पर पानी पिया और उससे धिरती के इलाके में पानी पहुंचाने की योजना पर विचार किया। तेजराम ने इन्हें बताया ''किसी समय दूलो चौधरी ने देवी-पिण्डी से झज्झर नाला से एक कूहल (छोटी नहर) सूहल गांव तक लाई थी। उसके निशान अब भी कहीं-कहीं मिलते हैं। बस वही एक स्थान है यहां से धिरती तक पानी पहुंचाया जा सकता है। अन्य कोई दूसरा विकल्प मुझे नहीं सूझ रहा है।''

बलदेव शाह को संकेत मिल गया। उन्होंने पैंथल गांव के प्रतिष्ठित लोगों को अपने घर बुलाया और नहर का काम आरम्भ करने की इच्छा जताई। गांव के कुछ पंचों ने तो शाह को इस काम के लिए प्रोत्साहित किया और कईयों ने उन्हें यह कह कर नित्रुसाहित किया कि सड़क और नहर बनाना खाला जी का घर नहीं है। ऐसे काम सरकार ही कर सकती है। अकेले व्यक्ति के बूते का यह काम नहीं ।

किन्तु बलदेव शाह ठप्पा दृढ़ निश्चय के व्यक्ति थे। उन्होंने भी मन में संकल्प किया कि चाहे मेरा अर्जित सारा धन व्यय क्यों न हो जाए मैं नहर बना कर ही रहूंगा। वे गांव के पंडित के घर गए। मुहूर्त पूछा और 1926 ई० के नवरात्र में मंगलवार के दिन बीस मज़दूरों को अपने साथ लिया और देवी पिण्डी में जाकर नहर की खुदाई का कार्य आरम्भ करा दिया।

नहर के रास्ते का सर्वेक्षण बलदेव शाह ठप्पा ने स्वयं किया। नहर की कुल लम्बाई दस किलोमीटर थी। इस में पांच किलोमीटर का मार्ग पहाड़ी था। मार्ग में कई स्थानों में छोटे-बड़े कई नाले थे। उन पर पुल बनाने की आवश्यकता थी। शाह जी ने नहर के रास्ते में जो बड़ी-बड़ी चट्टानें आईं उन को काटने के लिए बाहर से विशेषज्ञ भी बुलाये । कहीं-कहीं बारूद का प्रयोग भी करना पड़ा। नहर का मार्ग अति कठिन था। जिस मार्ग से नहर लाई जा रही थी उसके नीचे झज्झर उप नदी प्रवाहमान थी। यदि किसी मज़दूर का पांव ही फिसल जाता तो उसके नदी में गिरने की आशंका थी। जहां नहर की खुदाई का काम चल रहा होता वहां झाड़ियां पकड़-पकड़ कर पहुंचना पड़ता। नहर की खुदाई का काम बहुत ही कठिन था। कई बार मजदूर भाग जाते फिर नये मजदूर ढूंढ़ने पड़ते । शाह जी ने कुछ मज़दूर म्हौर के इलाके से बुलाये और उन्हें नहर की खुदाई के काम में लगाया । बलदेव शाह ने अपना कारोबार भी अपने कर्मचारियों को सौंपा और स्वयं कुदाल उठा कर नहर की खुदाई के काम में मज़दूरों के साथ जुट गए। वे प्रातःकाल उठते, कुदाल उठाते और मज़दूरों के पहुंचने से पहले ही खुदाई का काम आरम्भ कर देते। वे सूर्य डूबने तक नहर की खुदाई का काम स्वयं भी करते । नहर की खुदाई जब डेढ़ दो किलोमीटर हो गई तो पैंथल गांव के आस-पास बसे ग्रामीणों को यह विश्वास हो गया कि शाह नहर बना कर ही रहेगा। तब सहायता के लिए वे भी आगे आने लगे और श्रमदान के द्वारा शाह जी का हाथ बंटाने लगे। शाह जी ने नहर के मार्ग में जो नाले थे इन पर लोहे की चादर के पुल डाले। कहीं-कहीं पत्थर की ऊंची-ऊंची दीवारें चिन कर नहर का मार्ग बनाया । तीन वर्ष के कड़े संघर्ष और परिश्रम के बाद नहर बन कर तैयार हो गई। जिस दिन नहर में पानी छोड़ा गया उस दिन बलदेव शाह ठप्पा ने एक बहुत बड़ा यज्ञ किया जिस में हज़ारों की संख्या में ग्रामीण सम्मिलित हुए। उस दिन शाह जी ने निर्धनों को यथाशक्ति धन बांटा। उन्होंने पंडितों और पुरोहितों को वस्त्र, बर्तन, घोड़ा, भैंस और गाय आदि पशु दान में दिए। इस नहर के निर्माण में उन्होंने दो पेटी सोना और एक पेटी चांदी खर्च की। चांदी की एक और पेटी जो नहर के निर्माण के लिए इन्होंने मंगवाई थी वह चोरी हो गई।

नहर देवी पिण्डी से क्होड़ा लाई गई। जहां गुज्जरों के कई घर थे। वे नहर बन जाने के कारण अति सुखी हुए। उन के पशुओं को पीने के लिए पानी सुलभ हो गया। क्होड़ा से नहर सबराटियों पहुंची, यहां ठक्करों के घर थे, वे भी इस नहर से लाभान्वित हुए। सबराटियों से नगर, कुनेआं गांव में लाई गई। कुनेआं से आगे ढलाई थी। अतः नहर खोदने में विशेष कठिनाई नहीं आई। कुनेआं के खेतों को काटती हुई यह नहर पैंथल गांव पहुंची। पैंथल में पानी का कोई स्रोत नहीं था। लोगों को पीने का पानी भी दो किलोमीटर दूर जा कर बन्नी स्थान से लाना पड़ता था। पैंथल गांव में नहर आ जाने से गांव के लोग भी बहुत सुखी हो गए। पैंथल से यह नहर धन्ना गांव में पहुंचाई गई। यह वही स्थान था जहां बलदेव शाह ठप्पा ने पशुओं को प्यास से व्याकुल होकर विचरन करते देखा था। धन्ना से नहर सूहल गांव को सींचती करती हुई कड़केयाल गांव पहुंची और कड़केयाल से धिरती गांव तक पहुंचाई गई। जब नहर धिरती गांव की सीमा से आगे बढ़ी तो बलदेव शाह ठप्पा का स्वप्न पूरा हुआ। बलदेव शाह ने नहर तैयार हो जाने के बाद नहर की देख-भाल के लिए तीन कर्मचारी नियुक्त किए जिन में गुलाबू ने इस नहर को चलाये रखने के लिए आजीवन प्रयास किया।

राजसी सम्मान

पैंथल नहर जब बन कर तैयार हो गई तो इसे देखने के लिए ज्ञानकोट से महाराजा प्रताप सिंह के गुरु स्वामी नित्यानन्द जी महाराज पैंथल में आए और उन्होंने बलदेव शाह ठप्पा की लोक कल्याण भावना की भूरि-भूरि प्रशंसा की। महाराज प्रताप सिंह के बुलाने पर स्वामी नित्यानन्द जी महाराज जब भी नगर गए तो उन्होंने वहां महाराजा से बलदेव शाह ठप्पा की प्रशंसा की । स्वामी जी के कहने पर महाराजा प्रताप सिंह ने बलदेव शाह ठप्पा को श्री नगर में अपने दरबार में बुलाया । महाराजा ने अपने दरबारियों के सन्मुख बलदेव शाह का भव्य स्वागत किया और उन्हें दरबार में सम्मानित किया। महाराजा ने बलदेव शाह से यह अनुरोध किया कि यदि वे चाहें तो नहर पर खर्च किया गया धन उन से ले सकते हैं किन्तु बलदेव शाह ने महाराजा के यह अनुरोध विनम्र शब्दों में यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि प्रजा के धन पर राजा का अधिकार होता है, अतः मैंने जो धन खर्च किया वह मूलतः महाराजा का ही था।''

श्रीनगर से सम्मनित होने के बाद बलदेव शाह ठप्पा पैंथल वापिस लौट आए। उन की पहली पत्नी की उन्हीं दिनों मृत्यु हुई अतः उन्होंने चालीस वर्ष की

आयु में पैंथल गांव में ही पराशर परिवार में तीसरा विवाह किया। जिससे इनकी चार सन्तानें हैं। जिन के नाम रखोदेवी, रामप्यारी, वैष्णोदेवी और जनको देवी हैं। शाह जी ने पैंथल में अपने आवास के लिए एक हवेली बनाई जो एक छोंटे महल के समान दिखाई देती है। यह हवेली तिमंजली है।

पैंथल नहर बनवाने के बाद बलदेव शाह ने अपने आप को सामाजिक कार्यों में समर्पित किया। उन्होंने धर्मशालाओं में यात्रियों के लिए पीने के पानी की व्यवस्था की । और म्हौर में अति निर्धन लोगों की आर्थिक सहायता की । निर्धन माता-पिता की कन्याओं के विवाह का स्वयं वहन किया और गुज्जर तथा ठाकुर कबीले के लोगों की सामाजिक और आर्थिक दशा में सुधार लाने के लिए कई रचनात्मक काम किए। इससे उस पूरे क्षेत्र में इन की प्रतिष्ठा बढ़ी और वहां के सभी धर्मों और सम्प्रदायों के लोग इन का आदर करने लगे ।

सन् 1947 के दंगे

15 अगस्त 1947 को भारत विभाजन के बाद अक्तूबर 1947 में जम्मू प्रान्त के अन्य क्षेत्रों की भांति म्हौर और गूल गुलावगढ़ क्षेत्र में भी साम्प्रदायिक दंगे भड़कने से इस शान्त क्षेत्र में भी कबाईलियों ने उपद्रव मचाया। यह क्षेत्र मुस्लिम था अत: कबाइलियों ने इस क्षेत्र को सुरक्षित समझ कर स्थानीय लोगों की सम्पति को बहुत क्षति पहुंचाई । उन्हें जब बलदेव शाह की अतुल सम्पति का पता चला तो वे एक जत्थे के रूप में थुरु संयोगा गांव की ओर चल पड़े। स्थानीय गुज्जर और बकर वालों से अनुरोध किया कि उपद्रवियों के पहुंचने से पहले वे अपनी सम्पत्ति घोड़ों और खच्चरों में लाद कर अपने गांव चले जाएं अन्यथा वे उनके परिवार और उनकी सम्पत्ति को क्षति पहुंचा सकते हैं। उन्होंने बलदेव शाह की सेवा में घोड़े, खच्चर और अपने आदमी समर्पित किए। किन्तु बलदेव शाह ने उनकी बात नहीं मानी। उन्होंने सब से कहा-"मेरी यह सम्पत्ति मेरी नहीं आप सब की है। आप मेरे साथ हैं, अतः मुझे आततायियों से भी कोई भय नहीं है। मुझे अपनी प्राणों की भी कोई चिन्ता नहीं है। मैं आप लोगों के बीच ही जीऊंगा और आप लोगों के बीच ही मरूंगा।" गुज्जर सरदारों के समझाने बुझाने पर भी बलदेव शाह ने जब थुरु से बाहर जाने से इन्कार कर दिया तो वे उनकी सुरक्षा को लेकर चिन्ता में पड़ गए। उसी दिन सूर्य ढलने से पूर्व गांव में जब यह सूचना पहुंची कि आततायी अब थोड़ी ही दूर रह गए हैं तो गांव के अन्य हिन्दुओं के साथ इन के परिवार के लोग अपनी जान बचाने के लिए घर से निकल पड़े। वे अपने घर की कोई भी वस्तु अपने साथ न ला सके।

स्थानीय गुज्जरों ने इन के परिवार के लोगों को अंजस नदी पार करवाई, उन्हें सुरक्षित स्थानों पर पहुंचाया और वापिस लौट आए। बलदेव शाह अकेले ही अपने मकान में डटे रहे।

उसी रात उपद्रवियों ने इन के मकान को घेर लिया। इन्हें पकड़ लिया और इन के देखते ही देखते इन की दुकान और मकान का सामान सौ खच्चरों में लादा और इन के मकान को आग लगा दी। दो उपद्रवियों ने इनके जलते हुए घर में जैसे ही फैंकने का प्रयास किया तभी स्थानीय गुज्जर इन के सामने आ गए । उन्होंने उपद्रवियों से कहा–''शाह को छोड़ दो, यह हमारे बाप के समान है। इस ने हमारा पालन-पोषण किया है, हमारी सहायता की है, हम इसे मरने नहीं देंगे। उन्होंने उपद्रवियों से शाह जी को बचा लिया। वे शाह जी को साथ लेकर अंजस नदी की ओर आए । उन्होंने इन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुंचाया और लौट गए।

बलदेव शाह उपद्रवियों से बच तो गए किन्तु इन्होंने शुरु में जो लाखों रुपयों की सम्पति एकत्रित की थी वह इन की आंखों के सामने लुट गई। वे खाली हाथ जैसे तैसे अपने गांव लौट आए।

नये संघर्ष की तैयारी

गांव में आने के बाद इन्होंने आजीविका के लिए नये सिरे से संघर्ष करना पड़ा। इनकी पत्नी के पास थोड़े से रुपये थे। इन्होंने उन्हीं रुपयों से पुनः अन्न के क्रय और विक्रय आरम्भ किया। वे प्रातः चार बजे उठते खाली बोरियां उठाते और गांव-गांव में घूम-फिर कर अन्न खरीदते बोरियों में भरवाते और पैंथल ले जाते। पैंथल में इनकी अपनी दुकानें थीं। अतः यहां कुछ काम चल पड़ा। किन्तु अभी दो लड़कियां और तीन बेटे अविवाहित थे। उनके दायित्व निभाने के लिए बहुत से रुपयों की आवश्यकता थी। अतः इन्होंने पैंथल से बाहर निकल कर मंडियों के चक्कर लगाना शुरू किए। एक बार साम्बा में गए। वहां की मंडियों में जितना भी नमक था सारा खरीद लिया।

उसी सायं चम्बा से एक व्यापारी दो सौ खच्चरों का काफिला लेकर नमक खरीदने साम्बा आया। साम्बा का सारा नमक इन्होंने पहले ही खरीद लिया था, अतः विवश होकर उसे इन्हीं से नमक खरीदना पड़ा। इस सौदे में इन्होंने एक ही दिन में हज़ारों की कमाई की। इन्होंने साम्बा के हथकरघों का कपड़ा खरीदा और उसे उधमपुर की मंडी में बेचा उस से भी इन्हें बहुत लाभ हुआ। इसी

प्रकार वे व्यापार करने कभी अमृतसर की मंडी में चले जाते थे तो कभी जम्मू की मंडी के चक्कर लगाते थे। धीरे-धीरे इन का काम चल पड़ा। इन्होंने शुरू से आने के कुछ समय बाद अपने पुत्र-पुत्रियों का विवाह आदि किया।

पैंथल नहर जिसे इन्होंने अथक प्रयास करके बनवाया था, आर्थिक तंगी के कारण वह बन्द हो गई थी। दीनू-भाई पंत के नेतृत्व में लम्बे संघर्ष के बाद पंचायत विभाग ने इस नहर को अपने अधिकार में ले लिया, बाद में सिंचाई विभाग ने इस नहर को अधिग्रहित करके इसे पक्का बना दिया। यह नहर अब सात गांवों के खेतों को सिंचित करती है।

बलदेव शाह पैंथल नहर को पुनः प्रवाहित होते देखकर अति प्रसन्न हुए। आर्थिक अभाव होते हुए भी वे जन कल्याण के कार्यों में रत रहे।

बलदेव शाह ठप्पा का व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षक था। उनका मुंह गोल और माथा चौड़ा था। उन का कद साढ़े पांच फुट के करीब था और शरीर भरा हुआ था। वे सिर पर पगड़ी बांधते थे। और चूड़ीदार पाजामा पहना करते थे। सर्दियों में पट्टू का कोट और वे देसी जूता ही पहनते । उन में अहं-भाव लेष-मात्र भी नहीं था और एक धनाढ्‌य व्यक्ति होते हुए भी वे एक साधारण आदमी का जीवन जीते थे। उन्होंने अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन कभी नहीं किया । वे धर्म भीरु थे। ईश्वर में उन का अटल विश्वास था । उन्होंने अपने घर में ठाकुर द्वारा बनवाया था। जिस में बैठ कर ईश्वर भक्ति में रत रहते थे। सनातन धर्मी होने के कारण परम्परावादी भी थे और व्रत पूजा-पाठ में भी विश्वास रखते थे। प्रति वर्ष यज्ञ हवन करना कन्या पूजन दान देना, निर्धनों की सहायता करना, प्यासों को पानी पिलाना वह अपना धर्म समझते थे। उन्होंने चारों धर्मों की तीर्थ यात्रा की और साधु संतों की यथाशक्ति सेवा की। वे भाग्यवादी थे, अतः कुछ पाने पर उन्हें प्रसन्नता नहीं होती थी और कुछ खोने पर दुख भी नहीं होता था। अतिथि सत्कार उन के जीवन का एक लक्ष्य रहा । सहनशील वे स्वभाव से दयालु निर्मल हृदय थे।

पैंथल क्षेत्र के लोग आज भी उन का नाम बड़े आदर और सम्मान से लेते हैं । जीवन के अन्तिम दिनों में भी वे बेकार नहीं बैठे। वे एक कर्मयोगी थे और उन्होंने अपने जीवन में कर्म को ही महत्व दिया। अन्त में कुछ दिन बीमार रहने के बाद ब्यासी वर्ष की आयु में सन्‌ 1961 में इन्होंने अपने नश्वर शरीर का परित्याग किया।

पं० विश्वनाथ खजूरिया

❐ डॉ० सत्यपाल शास्त्री श्रीवत्स

डोगरी के विख्यात लेखक पं० विश्वनाथ खजूरिया को डोगरी साहित्य का पहला नाटककार, निबन्धकार और पहला ही आत्मकथा लेखक होने का गौरव प्राप्त है।

स्व० खजूरिया का जन्म 25 नवंबर 1906 ई० में माड़ी नामक गांव में (रियासी और कटड़ा वैणो देवी के निकट) पं. गौरी शंकर खजूरिया के घर हुआ था। जनवरी 1975 में जब जम्मू में ''डोगरा हिमाचल संस्कृति संगम की दूसरी कान्फ्रेन्स के समय मेरा पहली बार खजूरिया जी से परिचय हुआ तो मैं उस प्रथम भेंट में ही उनके मधुर स्वभाव से प्रभावित हुआ था । वस्तुतः हमारी वह प्रथम भेंट ही प्रगाढ़ मैत्री में बदल गई थी। इस प्रकार मैं धीरे-धीरे उनकेअन्तरङ्ग मित्रों की कोटि में आ गया और इस प्रकार उन्हें समीपता से जानने और परखने का सुअवसर पा सका। मैंने उनमें एक साहित्यकार के साथ-साथ एक सहृदय व्यक्ति भी पाया। जब वे राम नगर में अध्ययन कर रहे थे। तब उन्होंने अछूत नाटक लिखा जो कई वर्षों तक अप्रकाशित ही रहा और फिर राम नगर जैसे दूरवर्ती पर्वतीय प्रदेश में एक मिडल स्कूल में अध्यापक के रूप में कार्य करते हुए व्यक्ति के पास इतने साधन ही कहां थे कि वह अपनी रचना को जम्मू आकर प्रकाशित करवा पाते ? दूसरा उन दिनों यातायात के साधन भी मौसम की अनुकूलता के अनुसार ही होते थे।

उन्होंने डोगरी साहित्य को अपनी ऐसी मौलिक एवं उस प्रदेश की आंचलिकता को उजागर करने वाली वह नाट्यकृति दी जिस ने राम नगर तथा उसके आस पास के प्रदेश के समाज के भीतर एक विशेष प्रकार की उथल-पुथल पैदा कर दी।

उन्होंने ज्यों ही अपनी रचना 'अछूत' की पाण्डुलिपि तैयार की तो सबसे पहले दो प्रबुद्ध व्यक्तियों को दिखाई । वह थे डोगरी के एक जाने-माने कवि स्व० रघुनाथ सिंह सम्याल जो उस समय राम नगर में तहसीलदार के रूप में

कार्यरत थे। और दूसरे थे स्व० हेमराज जण्डयाल जो बाद में राज्य विधान सभा के सदस्य मनोनीत हुए थे और उन दिनों रामनगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में एक थे। परिणामत: उन दोनों ने श्री खजूरिया जी को अछूत एकांकी का मिडल स्कूल राम नगर में मंचन करवाने के लिए प्रेरित किया तथा पूर्ण सक्रिय सहयोग देने का आश्वासन भी दिया। अन्त: उन दोनों के सहयोग से 'अछूत' वहां के मिडल स्कूल में मंचित किया गया, जिसे आधुनिक तथा प्रगतिवादी विचारों के दर्शकों ने तो बहुत सराहा जबकि कट्टरपंथी एवं संकीर्ण विचारधारा के लोगों ने उसकी निन्दा की । उसके बाद राम नगर में स्व० खजूरिया दम्पति के साथ वहां के कट्टर पंथियों तथा धर्म के ठेकेदारों ने जो सलूक किया उसका विवरण उन्होंने अपनी आत्म कथा 'पगडंडियां' में इस प्रकार किया है ।

''जब मेरी नियुक्ति राजकीय मिडल स्कूल राम नगर में हुई तो मैं प्रारम्भ से ही वहां के जन-जीवन का अध्ययन करने में गहरी रुचि लेने लगा और फिर जब ग्रीष्मावकाश हुआ तो मैं बजाय जम्मू आने के अपनी पत्नी लीला को साथ लेकर रामनगर तहसील के दर्शनीय तथा प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर स्थान बसन्त गढ़ में जाकर रहने लगा। वहां के प्राकृतिक सौन्दर्य से अत्यन्त अभिभूत हुआ। ऐसा प्रतीत होता था कि मानो प्रकृति देवी वहां हर समय नृत्य करती रहती है। परन्तु मेरे उस आह्लाद और हर्ष में तब मानों विष घुल गया।''

जब मैंने वहां के समाज में साहुकारों तथा सरकारी अफसरों द्वारा गरीबों तथा दलित वर्ग के लोगों का अत्यन्त क्रूरता के साथ हर प्रकार का शोषण होते हुए देखा। उन गरीबों के प्रति घृणा और अस्पृश्यता का भाव भी मेरे दिल को झकझोर गया। वहां के समाज के रीति-रिवाजों में कई विसंगतियां देखने में आईं। इससे मेरे भीतर एक गहरी पीड़ा भी जागी और आक्रोश भी । बस, वह सब था प्रेरणा स्रोत 'अछूत' एकांकी लिखने का (पगडंडियां पृ० 76)

वे लिखते हैं 'मुझे उस समय यह देख कर अत्यन्त दु:ख हुआ कि ऊंची जाति के प्रभावशाली एवं धनिक लोग किस प्रकार-

इन गरीबों का हर प्रकार से शोषण करते हैं। वे दिन के समय तो इन के साथ स्पर्श करना भी गुनाह समझते हैं, जब कि रात के समय चोरी छिपे इनके घरों में जाकर इनकी युवती बहु-बेटियों का शीलभंग करते हैं। उनकी निर्धनता और सम्मान का मज़ाक उड़ाते हैं।' उस प्रदेश के अछूतों और निर्धनों की

अस्मिता और लुटते हुए सम्मान को देख कर उनका हृदय सहम उठा था और उसमें एक विशेष प्रकार की उथल-पुथल हुई थी। इसी का परिणाम था अछूत नाटक का सृजन तथा ऊपर वर्णित सूझ-बूझ एवं नई चेतना के लोगों के प्रोत्साहन एवं समर्थन से उसका रामनगर के मिडिल स्कूल में हुआ मंचन। उस नाटक के सफल मंचन से स्व० खजूरिया इतने उत्साहित हुए कि किसी के द्वारा मज़ाक भरे प्रोत्साहन से प्रेरित होकर रामनगर के बाजार में एक हलवाई की दुकान के आगे खड़े होकर जलेबियां खाते हुए एक चमार के हाथ से एक जलेबी लेकर खाने लग पड़े। बस, फिर क्या था ? सारे राम-नगर में हंगामा मच गया। नौबत यहां तक आ गई कि खजूरिया-दम्पति का सामाजिक बहिष्कार हो गया। उन्हें न कहीं से खाने-पीने का सामान मिले और न ही रामनगर के कुँओं तथा अन्य जलाशयों से पीने के लिए पानी ही नसीब हो। परिणामतः खजूरिया दम्पति को तीन दिन तक भोजन तो दूर पानी तक पीने के लिए प्राप्त नहीं हुआ। जब स्व० सन्तराम जण्ड्याल (स्व. हेम राज जण्ड्याल के पिता) को यह पता चला तो वह अत्यन्त दुःखी हुए और उन्होंने किसी की भी परवाह किए बिना उन्हें अपने कुएं से पानी भरने के लिए आमन्त्रित किया। इससे खजूरिया दम्पति को मानो जीवन मिल गया। (वही पृ० 79)

परन्तु उपर्युक्त सहायता और प्रोत्साहन के बावजूद खजूरिया दम्पति पर कट्टर- पंथियों के आक्रोश के काले बादल छाए ही रहे । कुछ दिनों के बाद ग्राम-पंचायत का विशेष अधिवेशन बुलाया गया, जिस में खजूरिय जी को उपस्थित होने के लिए कहा गया। वहां उनको एक अछूत (चमार) के हाथ से जलेबी लेकर खाने के कारण कड़ा दण्ड देने का निर्णय अभी लिया ही जाने वाला था कि भगवान् की कृपा से उसी समय वहां भिक्खू नामक चमार महिला आ टपकी जो आते ही शेरनी के समान गर्जने लगी कि यदि मास्टर खजूरिया को ग्राम-पंचायत ने बिना किसी ठोस तथा ग़ैर कानूनी कारण के दण्डित किया तो इसके भयंकर परिणाम होंगे, तथा वह (भिक्खू) पंचायत सदस्यों के ऐसे गुप्त रहस्य सबके सामने खोल देगी कि जिससे कोई भी समाज के सामने मुंह दिखाने के योग्य नहीं रहेगा ।

वे लिखते हैं कि उस चमार महिला की वह सिंह-गर्जना सुनते ही सभी के पैरों तले से मानो ज़मीन खिसकने लगी और सभी एक-एक करके वहां से भाग निकलने का रास्ता ढूंढने लगे। इस प्रकार उस निर्भीक तथा आदर्श महिला ने

खजूरिया जी को और अधिक, संभावित कठोर दण्ड से दण्डित होने से बचा लिया। बाद में कृतज्ञ खजूरिया ने उस भिक्खू महिला को अपनी कई कृतियों में कई प्रतीकों के माध्यम से चित्रित करके उसे अमर बना दिया । (वही पृ० 83)

वास्तव में तीस के दशक में महात्मा गांधी द्वारा सारे देश में अछूतों द्वारा आन्दोलन चलाया हुआ था जिस की लहर हमारी रियासत में भी आ गई थी। श्री खजूरिया द्वारा 'अछूत' का सृजन करने में इस आन्दोलन ने भी किसी न किसी रूप में अपना योगदान अवश्य दिया होगा ।

परन्तु दु:ख की बात यह है कि ज्यों ही स्व. खजूरिया राम नगर से तबदील होकर जम्मू आ गए तो लोग उनका नाटक भी भूल गए और अछूतोद्धार की उस लहर को भी। जहां तक कि जम्मू में भी डोगरी साहित्यकार एवं डोगरी भाषा और साहित्य का प्रचार करने वाले लोगों ने भी इनके नाटक को कई वर्षों तक तो मान्यता ही नहीं दो अपितु यह बात और भी विवादास्पद हो गयी कि डोगरी की पहली नाट्यकृति कौन हो सकती है । स्व. हेम राज जण्ड्याल के निजी पुस्तकालय की छानबीन कर के उपलब्ध हुई उस 'अछूत' एकांकी की पाण्डुलिपि ढूंढ निकाली और जम्मू आकर अपनी राम नगर यात्रा और अछूत की पाण्डुलिपि की प्राप्ति का विस्तृत विवरण शीराजा डोगरी नं० 57 (1983) में प्रकाशित हुआ जिससे डोगरी के नाटक साहित्य के इतिहास में नया मोड़ आया और समालोचक और लेखक यह मानने को विवश हो गए कि वास्तव में डोगरी नाटक रचना का प्रारम्भ 1935 में ही हुआ था।

'अछूत' एकांकी नाट्यकृति द्वारा डोगरी के पहले नाटककार सिद्ध हो जाने के बाद जब स्व. खजूरिया ने क्रमश: अपना पहला निबन्ध संग्रह-'डुग्गर का जीवन दर्शन' और 'पगडंडियां' शीर्षक आत्मकथा लिखी तो डोगरी साहित्यिक दुनिया में एक तहलका मच गया और डोगरी के चिन्तक, समालोचक तथा इतिहासकार यह निर्णय लेने के लिए विवश हो गए कि वस्तुत: श्री खजूरिया ही डोगरी साहित्य के पहले नाटककार, पहले निबन्धकार और पहले आत्मकथाकार हैं। उन्होंने अछूत की रचना से पहले और बाद में जो और अनुभव किया उससे साफ स्पष्ट हो जाता है कि उनकी बाद की कृतियों में उनका भोगा हुआ यथार्थ ही वर्णित हुआ है। इस प्रकार इन्होंने डोगरी साहित्य को जो कृतियां दीं उनसे

डोगरी भाषा और साहित्य का ही गौरव नहीं बढ़ा है बल्कि उससे तो डुग्गर समाज भी अवश्य गौरवान्वित हुआ है। इस सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी ने डुग्गर समाज और डोगरी साहित्य का जो उपकार किया है वह महान है।

उन्होंने कुल मिलाकर 8 नाटक लिखे हैं। इन नाटकों के कथो-पकथन बड़ी मंजी हुई तथा पात्रानुसार ठेठ, संतुलित तथा स्वाभाविक प्रवाह युक्त भाषा में इतने सन्तुलित हैं कि उनका प्रभाव पाठक और दर्शकों के मन पर समान रूप से अपनी चिरस्थायी छाप छोड़ता है । क्योंकि लेखक के दिल में डुग्गर के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था, अतः उनकी सभी रचनाओं में हिमाच्छादित पर्वत, छहर-छहर मधुर ध्वनि करते हुए पर्वतीय झरने, पहाड़ों की उपत्यकाओं और छोटी-बड़ी घाटियों के हरे-भरे मखमली घास के मैदान, हरे-भरे घने वन्य प्रदेश, इठलाती नाचती (नदियां) अपने प्रिय सागर की ओर उतावलेपन से बहती और सांस लेती हुई दृष्टिगत होती हैं। उनके नाटकों में सभी पात्र जीते-जागते नज़र आते हैं, इसीलिए उन्हें डुग्गर के अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधि मानने में हमें कोई झिझक नहीं होती।

यद्यपि वे अपने डुग्गर समाज के रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं के प्रति पूरी तरह से सजग नज़र आते हैं तो भी उन्हें रूढ़िवाद से चिढ़ थी। इसीलिए जहां कहीं भी उन्होंने ठीक समझा सामाजिक सुधार के लिए अपनी क्रान्तिकारी आवाज उठाई। यही कारण है कि उन्होंने अपने समकालीन डोगरी लेखकों से अपना रास्ता थोड़ा अलग चुना । उनकी शैली मधुर, सरस, मुहावरेदार और दिल को छू लेने वाली है।

रचनाएं :-

(1) एकांकी- 8 (इन में से 6 'नीलकण्ठ शीर्षक' के अन्तर्गत संग्रहीत।

(2) निबन्ध) डुग्गर दा जीवन दर्शन

ख) सप्तक-सात मनोवैज्ञानिक निबन्धों का संग्रह-1968 ।

(3) आत्मकथा- पगडंडियां

(4) लोकनृत्य- डुग्गर में प्रचलित लोक नृत्यों के विषय में एक परिचयात्मक लघु रचना ।

अनुवाद बत्ते दे दावेदार प्रसिद्ध बंगाली उपन्यासकार शरत्चन्द्र के उपन्यास 'पथ के दावेदार' का अनुवाद

'नील कमल' फणीश्वर नाथ रेणु के इसी नाम वाले प्रसिद्ध उपन्यास का अनुवाद ।

उमराओ जान अदा।

मिर्जाहादी रुसवा की उर्दू कृति का अनुवाद साहित्य अकादमी दिल्ली द्वारा पुरस्कृत ।

इनके कई रेडियो नाटक आकाशवाणी जम्मू से समय-समय पर भी प्रसारित हुए ।

ऐसे विद्वान रचनाकार पर डुग्गर को गर्व है ।

सर रामनाथ चोपड़ा

❑ सुभाष चन्द्र खजूरिया

मन समर्पित, तन समर्पित।
जीवन का कण-कण समर्पित॥
चाहता हूं देश की धरती,
तुझे कुछ और भी दूं। और भी दूं।।

कवि की पंक्तियां हर ऐसे व्यक्ति की आंतरिक भावनाएं हैं, जिसमें अपने देश, अपनी मातृभूमि के चरणों में सदा कुछ न कुछ अर्पित करने की लालसा रही हो, और जिसने स्वयं को एक सेवक मात्र जानकर अपने समाज, अपने देश की सेवा करते हुए उसके गौरव में वृद्धि करना इसके अपना परम कर्त्तव्य जाना हो।

जम्मू की महान विभूतियों में "प्रो० सर रामनाथ चोपड़ा का नाम अग्रगण्य है। जिन्होंने भारतीय चिकित्सा के क्षेत्र को नये आयाम दिये थे इसलिए फारमाकालोजी का जगत् प्रसिद्ध नायक माना जाता है।

प्रो० चोपड़ा का जन्म अगस्त सन् 1882 ई० में जम्मू कश्मीर राज्य के एक सुशिक्षित तथा सुलझे हुए पंजाबी परिवार में हुआ, अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण उन्हें स्वदेशी तथा विदेशी चिकित्सा शोधकर्त्ताओं द्वारा स्नेह तथा पूरा सहयोग प्राप्त था। जनसाधारण के मन में भी प्रो० चोपड़ा के प्रति सम्मान तथा प्यार था। उनके प्रति लोगों के सम्मान तथा आदर का एक अन्य मुख्य कारण था, उनकी चारित्रिक विशेषताएं । स्वभाव में सरल, सादगी पसंद तथा व्यवहार में अति कोमल थे।

अपने शोध कार्यों द्वारा उन्होंने भारत को विज्ञान-जगत् में एक उच्च स्थान दिलवाया। उनका शोध कार्य आयुर्वेदिक औषधियों से सम्बंधित था। अपने शोध कार्य द्वारा उन्होंने भारत फारमाकालोजी की रचनात्मक सम्भावना की। विज्ञान जगत् में प्रतिष्ठा बढ़ाई तथा एक उच्च कीर्तिमान स्थापित किया। उनके सफल प्रयासों के कारण उन्हें औषधियों के संरक्षण तथा उत्पादन का विशेष ज्ञाता माना गया। भारत में नशीले पदार्थों जैसे कोकीन तथा 'केन्नविस' इत्यादि के सेवन पर

प्रतिबंध लगवाकर तथा नशे से पीड़ित लोगों को चिकित्सा द्वारा रोगमुक्त करके अति सराहनीय कार्य किया। उनके इस कार्य को सम्पूर्ण भारतवर्ष में सराहा गया।

प्रो० चोपड़ा जी की प्रारम्भिक शिक्षा सरकारी कालेज लाहौर (पंजाब) से शुरू हुई। वहीं से उन्होंने साईंस की प्रथम डिग्री प्राप्त की। इसके पश्चात् सन् 1903 ई. में वे Bowing College कैंब्रेज गए और वहां से उन्होंने 1905 ई. में "नैचुरल साईंसीस ट्रीपोस" (Natural Sciences Tripes) की डिग्री प्राप्त की। उन्होंने सैंट "बारदोलोमीयु" चिकित्सालय लंदन में अपनी डाक्टरी की शिक्षा जारी रखी तथा सन् 1908 ई. में प्रथम मैडीकल डिग्री (B. ch. Cantab) प्राप्त करके उसी वर्ष डॉक्टर के पद पर सुशोभित हुए। परन्तु सन् 1909 ई. में जब वे भारत वापिस लौट आए तो उन्हें 19-पंजाब रैजीमैंट में North-West frontier में नियुक्त कर लिया गया। सन् 1914 ई. में जब प्रथम विश्व युद्ध छिड़ गया तो उस समय वे कैप्टन के पद पर नियुक्त थे। उन्हें पूर्वी अफ्रीका के उस क्षेत्र में भेजा गया जहां जर्मनी के उपनिवेशों, किनीयां तथा टांगानेका के मध्य भीषण युद्ध छिड़ा हुआ था। यहां उन्होंने अपने जीवन के दो वर्ष बहुत गम्भीर तथा कठिन परिस्थितियों में बिताए। उनकी युद्ध सम्बन्धी डायरी से उस समय के अफ्रीकी आदिवासियों तथा वहां की दयनीय स्थिति की पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। यूरोपी मिश्नरी-जर्मनी तथा ब्रिटिश दोनों ने पूर्वी अफ्रीका में अपने-अपने उपनिवेश स्थापित किए हुए थे। इन उपनिवेशों की अलग-अलग प्रथाएं तथा रीतियां थीं, दूर-दूर तक प्रचलित औषध पद्धतियां थीं, जिनके बारे में प्रो. चोपड़ा ने भरपूर ज्ञान प्राप्त किया। उन्हें वहां भिन्न-भिन्न प्रकार के जंगली खेलों, जंगली जानवरों आदि को देखने का अवसर मिला। अतः हम कह सकते हैं कि पूर्वी अफ्रीका में चाहे उन्हें अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा, परन्तु वहां से उन्हें नए-नए अनुभव प्राप्त हुए।

प्रो० चोपड़ा सन् 1919 ई. में कुछ समय के लिए भारतीय फौज में शामिल होकर अफगान युद्ध में डी.ए.वी.एम.एस. (DADMS) की हैसियत से लड़े।

सन् 1903 ई. से लेकर सन् 1909 ई. तक की अवधि में प्रो. चोपड़ा का कैंब्रेज तथा लंदन में अपनी शिक्षा प्राप्ति के लिए व्यतीत किया गया समय ऐसा समय था, जिसमें ब्रिटिश डॉक्टरी साईंस दिन-प्रतिदिन उन्नति की चरम सीमा की ओर निरन्तर अग्रसर हो रही थी। इस समय के विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिकों जैसे "बारक्राफ्ट" डिक्सन, नुट्टाल, औलसर तथा लैंडडोन ब्रॉऊन आदि के सहयोग तथा देख-रेख में कार्य करने का प्रो० चोपड़ा को सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनका

डॉक्टोरेट सम्बन्धी थीसिस विश्व विख्यात वैज्ञानिक 'वाल्टर डिक्सन' के साथ शोध कार्य करते समय ही पूरा हो गया था। वाल्टर डिक्सन कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में नई स्थापित की गई पेपर के ''फारमाकालोजी'' के पहले प्रोफेसर थे। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से प्रो० चोपड़ा ने सन् 1920 ई. में एम.डी. (MD) तथा सन् 1957 ई. में एस.सी.डी. की डिग्री प्राप्त की।

सन् 1921 ई. में युद्ध से वापिस लौटते ही प्रो. चोपड़ा जी को फार्माकॉलिजी के प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया गया। फारमाकॉलोजी की यह पेपर अभी हाल ही में स्थापित हुए। ''स्कूल ऑफ ट्रॉपिकल मैडिसन'' कलकत्ता में बनी थी। कुछ समय बाद उन्हें यहां के निर्देशक के पद पर नियुक्त कर दिया गया। इस नियुक्ति के कारण सिपाही जीवन से उनका सम्बन्ध सदा के लिए टूट गया।

प्रो. चोपड़ा के मन में असहाय तथा निर्धन वर्ग के प्रति सदैव करुणा तथा प्रेम रहा था वे उनकी दयनीय स्थिति तथा पीड़ा को देखकर स्वयं पीड़ित हो उठते थे। बंगाल में जब उन्होंने वहां के निर्धन और असहाय वर्ग की रोगग्रस्त स्थिति देखी तो उनके मन में दुःख का सागर उमड़ पड़ा और वे इस प्रकार चिंतित हो गए जैसे कि यह रोग तथा पीड़ा उन लोगों की न होकर स्वयं इनकी है। इस स्थिति को देखकर उन्होंने यहां के निवासियों तक चिकित्सा सहायता पहुंचाने का प्रण किया। पश्चिमी चिकित्सा बहुत ही महंगी थी, इसलिए प्रो. चोपड़ा ने वहां के लोगों के रोग मुक्त करने के लिए देसी-दवाइयों वाली जड़ी-बूटियों तथा पौधों जिनका प्रयोग प्राचीन काल से आयुर्वेदिक, तिब्बती, यूनानी तथा अन्य औषधि पद्धतियों में होता था, उनका अच्छी प्रकार से मुआयना किया। एक दिन सायंकाल के समय उन्होंने जड़ी-बूटियों के तत्वों को अलग-अलग करके उनके रसायनिक प्रभाव को जीव-जन्तुओं पर परखा। कारमीकेल (Carmichael) चिकित्सालय जोकि स्कूल आफ ट्रॉपिकल मैडीसन के बिल्कुल निकट स्थित है, वहां प्रो० चोपड़ा ने एक विस्तृत डॉक्टरी खोज तथा जांच पड़ताल की। उन्होंने आयुर्वेद के क्षेत्र में प्रसिद्ध इलाजों का प्रयोग किया। जैसे ईसबगोल, कुरची, और बेअल का प्रयोग अंतड़ियों की खराबी तथा बीमारियों के लिए किया गया। चाऊलमूगरा (Chaulmoogra) का प्रयोग कोढ़ जैसे भयानक रोग को दूर करने के लिए किया गया तथा रौनवोलफिया (Rounvolfia) का प्रयोग अतंड़ियों तथा उच्च रक्तचाप जैसे रोगों को दूर करने के लिए किया गया। राष्ट्रपति महात्मा गांधी प्रो० चोपड़ा के उन रोगियों में से थे जो कि उच्च रक्तचाप से पीड़ित थे, इनका इलाज प्रो० चोपड़ा ने रौनवोलफिया सरपैनटिना (Raunvolfia serpentina) के आधार पर किया।

जड़ी-बूटियों पर शोध करके उन्होंने लोगों के समक्ष सफल परिणाम रखे। उनके इन कार्यों के लिए सन् 1925 ई. में उन्हें (Minto Gold Research Medal) प्रदान किया गया तथा सन् 1934 ई० में (Drug Inquiry Commitee) के चेयरमैन के पद पर रहकर अति सराहनीय कार्यों के लिए उन्हें सी. आई. ई. के एवार्ड के लिये मनोनीत किया गया। जड़ी-बूटियों पर शोध करते समय उन्होंने भारत में बनाई जाने वाली दवाईयों के निम्न स्तर तथा उनमें पाई जाने वाली मिलावटों की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करवाया। अपनी रिपोर्ट के अंत में उन्होंने इस सम्बन्ध में सरकार द्वारा कानूनी कार्यवाही किए जाने पर बल दिया। ड्रग एक्ट ऑफ 1990 उन्हीं के प्रयासों का परिणाम था। कुछ काल पश्चात् (Biological Standardization Laboratory of India) की स्थापना की गई और प्रो. चोपड़ा को यहां के सर्वप्रथम निर्देशक (Director) के रूप में नियुक्त किया गया।

सन् 1935 ई. में उनको King (Georgy V, Hanourary Physisian नियुक्त किया गया। जब वे सेवा मुक्त किए जाने लगे तो उनके महत्व तथा गुणों को ध्यान में रखते हुए उनकी सेवा अवधि दो वर्षों के लिए बढ़ा दी गई। सन् 1938 ई. में उनको (Fellow of the royal college of London) चुना गया तथा सन् 1914 ई. में उनको उनकी आयुर्वेद के क्षेत्र में की गई खोजों तथा पड़तालों के लिए सर (Sir) की उपाधि से सम्मानित किया गया।

अपने ही देश में पाई जाने वाली भिन्न-भिन्न प्रकार की जड़ी-बूटियों का प्रयोग उन्होंने अधिक महंगी दवाईयों के स्थान पर किया। उन्होंने भारत में मुख्य रूप से पाई जाने वाली बीमारियों जैसे-काला अज़ार (Kala Azar) मलेरिया, (Ameobasis and bacillary and ameobic dysentries. Filariases and Helmnith infection) आदि बीमारियों के विषय गहरी खोज पड़ताल की तथा इन बीमारियों के विषय में नए-नए इलाज ढूंढ निकाले। वे एक लम्बे समय तक (Norcotic Drugs Commission of word health organization) के सदस्य भी रहे।

कलकत्ता स्कूल आफ ट्रॉपिकल मैडीसन से सेवा मुक्त होने पर उन्होंने अपनी खोज-पड़ताल का क्षेत्र अपनी जन्म भूमि जम्मू राज्य को बनाया। जम्मू राज्य में उन्होंने (Drug Research Laboratories) तथा (Expermental Drug Forms) जिनके साथ (Pilot Manufacturing Plant) जुड़ा हुआ था कि स्थापना की। इस सुखमय कार्य में गणमान्य लेखक (तथा उनके पुत्र श्री आई. सी. चोपड़ा) भी शामिल हो गए। इस सारे संगठन को बाद में (Govt. India's Council of

Sceintific and Industries) ने इसका एक राष्ट्रीय प्रयोगशाला के रूप में अपने अधीन ले लिया तथा इसका एक नया नाम रखा गया, (Regional Research Laboratories) जम्मू व कश्मीर तथा (Central Indian Medical Plants Orgnization) जिसका मुख्य कार्यालय इस समय लखनऊ में है। प्रो. चोपड़ा ने औषधि निर्माण में प्रयुक्त होने वाली जड़ी-बूटियों को बड़ी मात्रा में उगाये जाने के लिए आंदोलन चलाया, जैसे कि (Balladona. Digitales. Pyrethrum. Raunvilfia. Glycerhizza. Mentha तथा अन्य कई जड़ी बूटियों जोकि दवाईयां बनाने के काम आती हैं, विशेष रूप से उनके रोपण पर बल दिया गया। देश के कई-भागों में उन्होंने जड़ी-बूटियों की सही पहचान के लिए कई केन्द्र स्थापित करवा रखे थे ताकि दवाईयों में किसी भी प्रकार की मिलावट न हो सके। भारतीय औषधि विज्ञान का उच्च आयात देने वालों में प्रो. चोपड़ा जी का नाम सबसे आगे है। उनके सराहनीय कार्यों ने उन्हें सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध बनाया। अपने आप को सफलता की चरम सीमा पर खड़ा देखने के लिए उन्होंने जो परिश्रम किया उसका वर्णन शब्दों में करना एक बहुत ही कठिन कार्य है।

उन्होंने औषधि विज्ञान सम्बन्धित कई पुस्तकें लिखीं जिनका औषधि विज्ञान में एक अपना ही महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कई मौलिक खोज-पत्र भी लिखे। प्रो. चोपड़ा पृथ्वी पर अवतरित हुए एक ऐसे महान् पुरुष थे जिन्होंने अपने विवेक तथा परिश्रम से विज्ञान जगत् को प्रकाशित किया।

प्रो. चोपड़ा की कुछ मुख्य रचनाएं इस प्रकार हैं :-

1. Anthelintics 1928.
2. Indigenous Drugs of India 1933.
3. Handbook of Tropical Therapatics 1934.
4. A Treatise In Tropical Therapeetics 1950.
5. Poisonous Plants of india Vol I and II 1954.
6. Glossary of Inland Medecinal Plants 1956.
7. Chopra's Indiagenous Drugs of india 1958.
8. Hand book of Applied Phrmacology on therapentics 1963
9. Hand book of Medical Treatment 1964.
10. Drug Addiction with Special Reference to India 1965.
11. Addendum to Glossary of indian Medicenal Plants 1966.

सेवा मुक्त होने पर प्रो. चोपड़ा ने अपना बाकी का जीवन कश्मीर में बिताया। उनके पास अपने सगे सम्बन्धियों का आना जाना लगा रहता था। उन्हें कश्मीर के ग्रामीण क्षेत्रों में गाड़ी चलाने में बहुत आनन्द प्राप्त होता था। यदि कोई अवसर हो तो वे कोई न कोई उर्दू या फ़ारसी शे'र कहने से कभी नहीं चूकते थे।

किसी कारणवश स्वास्थ्य में अस्वस्थता आने के कारण जब उनका अंतिम समय निकट आ पहुंचा तो वे बार-बार यह शे'र गुनगुना रहे थे जो कि उनके आस-पास के लोगों के लिए बिल्कुल अनजाना था :-

ग़ाफ़िल ये घड़ियाल देता है मुनादी,
गर्दिश ने घड़ी उम्र की इक और घटा दी।

प्रो. चोपड़ा सम्भवत: जान गए थे कि उनका अंतिम समय अब निकट आ पहुंचा है, परन्तु अपने जीवन से उन्हें किसी भी प्रकार की शिकायत नहीं थी क्योंकि उन्होंने एक महान, कर्मठ और परम परोपकारी जीवन जिया था।

80 वर्ष की उम्र में जम्मू-कश्मीर राज्य ने ऐसे अनन्य वैज्ञानिक को खो दिया।

गौरी नंदन सिंह बाली

(आबिद मनावरी)

❒ *प्रेमी रूमानी*

आबिद एक बेहद भले आदमी और उच्चकोटि के शायर थे। लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व, उनकी शायरी से मैं वाकिफ़ था, परन्तु भेंट का सौभाग्य काफी समय बाद प्राप्त हुआ। संभवतः 1970 की बात है। मेरी कुछेक कहानियां और साहित्यिक रचनाएं दैनिक 'आफताब'[1] श्री नगर के साहित्य-संस्करण में छप चुकी थीं और ना जाने क्यों, अब मुझ पर शायरी का भूत सवार हो चुका था। घर में पिता श्री डॉक्टर बृज प्रेमी मेरे पद्य को सुधारा करते थे। जब मैंने अचानक काव्य-क्षेत्र में कदम रखा, तो उन्होंने मुझे अपने एक मित्र हकीम मंजूर के सुपुर्द कर दिया। हकीम साहब बड़े सहृदय व्यक्ति हैं। उन्होंने मुझे शे'रो-अदब से परिचित कराया। एक दिन मैं नियमानुसार, उनकी सेवा में हाजिर हुआ और उनके साथ साहित्य व काव्य पर विचार-विनिमय कर रहा था।

कमरे में एक अजनबी सज्जन आए और एक कोने में बैठ गए। वे बड़े ही चुप लगते थे, परन्तु कभी-कभी हमारा वार्तालाप सुनकर, होंठों में मुस्करा देते थे। जब मैं थोड़ी देर के बाद विदा लेने लगा, तो हकीम मंजूर ने उनके साथ मेरा परिचय कराया। ''यह हैं आबिद मनावरी-गौरी नंदन सिंह बाली ! जम्मू से कल ही आए हैं।'' मेरे लिए यह परिचित नाम था ही; उनके देखकर 'बहारे ग़ज़ल'[2] के कुछेक शे'र याद आ गए :

अपनी-अपनी नज़र है ए आबिद,
ज़िंदगी फूल भी है, कांटा भी।

हर गली में हैं, हर जुबां पर हैं,
मेरी दीवानगी के अफ़साने।

यह ग़ज़ल भी तुम्हारी आबिद,
हर किसी ने पंसद की है। .

---

1. मेरी प्रथम कविता जून, 1968 के मासिक पयामे तालीम दिल्ली में छपी।
2. आविद मनावरी का प्रथम काव्य-संग्रह।

मेरे शे'रों पर झूम कर आबिद,
दाद देते हैं अर्श सह वाई।

आबिद साहब बड़ी नम्रता से मिले। उन्होंने मुझे गले से लगाया और दुआएं दीं। इसके बाद एक दीर्घकाल तक, उनसे कोई भेंट न हो सकी। परन्तु उन्होंने मुझे अपनी नेक दिली से निहाल कर दिया। इसकी छाप आज भी मेरे मन-मस्तिष्क पर हैं।

1976 में श्री नगर के टूरिस्ट रिसेप्शन सेंटर में, अखिल भारतीय हिन्दी-उर्दू संगम (श्री नगर शाखा) की ओर से, एक यादगारी मुशायरा आयोजित हुआ था। इस संस्था के सर्वे सर्वा मेरे प्रिय मित्र नज़ीद अहमद नज़ीर थे। मैंने हाल ही में इसका मंत्री-पद संभाला था। प्रो० शकील उल रहमान भी इस संस्था के साथ कुछ समय बाद जुड़े थे और इस प्रकार संस्था में नई जान आ गई थी। अतएव जाने-माने विद्वान एवं राजनीतिज्ञ स्व. श्री डी.पी. धर की प्रथम पुण्य तिथि पर उनके सुपुत्र श्री विजय धर के सहयोग से, एक अखिल भारतीय मुशायरा करने का निर्णय किया गया। इस यादगारी मुशायरे में, स्थानीय कवियों के अतिरिक्त देश के अन्य शहरों के अनेक विख्यात कवि भी आमंत्रित थे। शहरयार फिज़ा इबन फैज़ी, मख़मूर ज़ैदी, विमल कृष्ण अलख, मजहर इमाम, सुल्तान अख्तर, शाम रिज़्वी आदि के अलावा अली सरदार जाफरी, कैफ़ी आज़मीं, अख्तर उलईमान, जान निसार अख्तर, राही मासूम रज़ा, नश्तर खानक़ाही, बेक़ल उत्साही इत्यादि भी अपेक्षित थे। जम्मू से आबिद मनावरी भी निमंत्रित थे। इस बार आबिद से काफी देर तक मिल बैठने का अवसर मिला। आबिद ने अपने विशिष्ट ढंग से अपनी ग़ज़ल प्रस्तुत की और दाद ली।

आबिद साहब के साथ एक और मुलाकात याद आ रही है। वे जम्मू के राजस्व विभाग के कर्मचारी थे, जो टाऊन हाल स्थित है। मैं कुछेक दिनों के लिए जम्मू आया था और अपने छोटे भाई के पास ठहरा था, एक दिन घूमते हुए, बिना पूर्व-सूचना के, आबिद साहब के दफ्तर में पहुंच गया। वे मुझे देखकर विस्मित हो गए। एकाऊंटस का मामला बड़ा नाजुक होता है, परन्तु उन्होंने उसी समय अपने सारे सरकारी काम स्थगित कर दिए और बड़े खिले माथे से पेश आए। मैं उनकी बातों से धन्य हो गया। बाद में वे मुझे अपने घर ले गये और भाभी की अनुपस्थिति में, स्वयं भोजन बनाया और मुझे बड़े प्यार से खिलाया। यह जनवरी, 1980 की एक दोपहर की बात है।

1990 में जब हम घर-बार छोड़कर जम्मू चले आए, तो आबिद को बहुत अफ़सोस हुआ। लगभग रोज़ उनसे भेंट हो जाती थी। वे हर समय मुझे दुःखी

देख कर मुझे सांत्वना देते थे। उन्हीं दिनों पिता जी के आकस्मिक निधन ने जब मेरे जीवन को बिखेर सा दिया, तो आबिद को बड़े क्षुब्ध हुए। वे हर वक्त मुझे ढांढस बंधाते रहे और मुझे आगे चलने का साहस देते रहे।

आबिद साहब के साथ असंख्य मुलाकातें मेरे अन्तर मन में ताज़ा है। वे हर बार प्रेम और आत्मीयता से मिलते थे। उनकी धर्म पत्नी का निधन हो गया तो यह आघात वे सहन न कर सके। वे स्वयं को हर समय एकाकी अनुभव करने लगे और प्राय: बीमार रहने लगे। वे पहले ही मधुमेह के शिकार थे। इस आघात ने उन्हें जीवन की हर खुशी से वंचित कर दिया और अन्त में 19 सितंबर, 1995 को, इस संसार से विदा हो गए।

आबिद मुशायरों के सफल शायर थे। राज्य में जहां कहीं भी मुशायरा होता था, उनकी उपस्थिति निश्चित होती थी। वे अपने विशिष्ट अंदाज में अपनी ग़ज़ल पेश करते थे और श्रोताओं से प्रशंसा प्राप्त किए बिना नहीं रहते थे। मुझे भी प्राय: उनके साथ महफिलों और मुशायरों में कलाम पढ़ने के अवसर मिले। वे मेरा काफी उत्साह बढ़ाते थे और जहां कहीं भी दोष देखते, तुरन्त संशोधन करते और सुझाव दिया करते थे। इस समय एक ऐसी ही गोष्ठी याद आ रही है। आज से लगभग चार वर्ष पूर्व, नज्में-अदम (जम्मू) की ओर से यूनिवर्सिटी गेस्ट हाऊस में एक महफिले-मुशायरा आयोजित हुई। श्रीनगर से प्रसिद्ध कहानीकार प्रो. मख़्मूर बख़्शी पधारे थे। जम्मू विश्व-विद्यालय के उर्दू-विभाग के प्रो. मंज़र आज़मी शैक्षणिक और साहित्यिक गोष्ठियों के प्रेमी थे। उनके कहने पर, एक महफिले-शे'र आयोजित की गई। इसमें मेरे अलावा प्रो. मंज़र आज़मी, प्रितपाल सिंह बेताब, मोहम्मद यासीन बेग, तालिब अमीन आबादी, वगैरा आसी, असुदुल्ला और अनेक नये शायरों ने भाग लिया। आबिद साहब भी आमंत्रित थे। उन्होंने उस रोज़ भी विशिष्ट ढंग से अपनी गज़ल सुनाकर श्रोताओं को आनंदित किया। जहां कहीं भी अदबी महफ़िल होती या मुशायरा आयोजित होता, श्रोता और शायद दोनों आबिद साहब की, अधीरता से प्रतीक्षा करते थे।

स्थानीय मुशायरों और महफिलों के अलावा आबिद हर बार अखिल भारतीय मुशायरों में भी भाग लिया करते थे। देश के दूर-दूर स्थित नगरों से आए हुए कविगण भी उनका कलाम सुनकर प्रभावित होते थे। अपनी स्वाभाविक योग्यता के कारण वे स्थानीय शायरों में ही नहीं, बल्कि उर्दू के आधुनिक प्रतिनिधि ग़ज़लकारों में गिने जाने लगे थे।

एक ज़माने में अर्श सहबाई और आबिद की शायरी की, रियासत में बड़ी धूम थी। दोनों विख्यात शायर व कला-मर्मज्ञ जनाब जोश मिल्सयानी के शिष्य रह चुके हैं। एक मुद्दत तक, इन दोनों साहित्यकारों की जोड़ी 'समय के

प्रचलित मुद्रा' मानी जाती थी। फिर इन के साथ हकीम मंज़ूर भी जुड़ गए, तो यह एक 'तिकोन' कहलाई। इन तीनों शायरों ने दीर्घकाल तक राज्य के साहित्यिक क्षेत्र में हलचल मचाई थी। परन्तु बाद में एकाएक, ठहराव-सा आ गया। किसी मतभेद के कारण, इस तिकोन का दूसरा 'ज़ाविया' अलग हो गया। फिर भी इनके दिलों में कोई रंजिश ना रही। दोनों जब भी मिलते, तो एक-दूसरे के साथ टूट कर मिलते थे और अनेक विषयों पर बातचीत करते थे। आबिद की मृत्यु पर, अर्श जैसे शायर भी फूट-फूट कर रोए। उन्होंने आबिद के निधन का अपना व्यक्तिगत क्षति कहा।

आबिद मनावरी का पारिवारिक नाम गौरी नंदन सिंह बाली था। परन्तु बहुत कम लोग उनको इस नाम से जानते थे। यद्यपि उनकी मातृभूमि तहसील अखनूर का एक छोटा सा गांव मनावर है; उनका जन्म 27 मई, 1937 को जम्मू में हुआ। उनके पिता रायज़ादा बरकत राय बाली एक सुसंस्कृत एवं आत्मीय बुजुर्ग थे। प्रतिष्ठा और स्वाभिमान उनकी रग-रग में था। आबिद ने इस पारिवारिक धरोहर को जीवन-भर हाथ से जाने नहीं दिया। वे स्वाभिमानी और दृढ़ व्यक्ति थे। आबिद ने अपनी शिक्षा जम्मू के स्थानीय स्कूलों में प्राप्त की। मैट्रिक के बाद कालेज में दाखिल हुए ; परन्तु इसके अतिरिक्त सुधार विभाग के कर्मचारी बने। जब यह वातावरण रास ना आया, तो कुछ समय बाद एकाऊंटस विभाग में कलर्क हो गए। बचपन में उन्होंने ना जाने कौन-से सपने देखे थे। उन सपनों में रंग भरने का उन्होंने यद्यपि अथक परिश्रम किया, परन्तु भाग्य किसका साथ देता है ? अपने भाग्य को कोसते हुए एक जगह लिखते हैं :-

तेरी तक़दीर में लिखा है यही ऐ आबिद।
ख्वाब तू देख, मगर ख्वाब की ताबीर ना देख।

आबिद अपने अनथक परिश्रम और योग्यता से, नौकरी के दौरान विभिन्न पदों पर आसीन रहे, परन्तु उनका कार्य दो और दो चार का लेखा-जोखा था। यदि उन्हें किसी साहित्यिक संस्थान में नौकरी मिली होती, तो निश्चय ही अपनी योग्यता से उन्होंने कई और महत्वपूर्ण साहित्यिक उपलब्धियां प्राप्त की होतीं। परन्तु यह भी क्या कम महत्वपूर्ण है कि वे उम्र-भर लोगों के हिसाब-किताब ठीक करते रहे और उनकी गुत्थियों को सुलझाते रहे ?

आबिद शुरू से ही शायराना सोच रखते थे। उन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा 1958 में आरम्भ की। आरंभिक कलाम हज़रत जोश मल्सियानी को दिखाया करते थे, जो उन दिनों अक्सर जम्मू आया करते थे, आबिद ने शे'र-शायरी के प्रशिक्षण में, जोश से पूरा-पूरा लाभ उठाया। वह उनकी गुरु-जैसी योग्यता के

कायल थे। उन्होंने अपनी कई आरंम्भिक ग़ज़लों में इस बात को माना है। एक जगह कहते हैं :

धूम है जो कलाम-ए-आबिद की,
जोश साहब का फैज़े-पैहम है।

आबिद का प्रथम काव्य-संकलन 1961 में 'बहारे-ग़ज़ल' के नाम से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की विशेषता यह है, कि ये ग़ज़लें अत्यंत छोटी बहर में कही गई हैं। यद्यपि इन ग़ज़लों का परम्परागत रंग है, किन्तु आबिद ने अपनी कलात्मक खूबी हाथ से कभी भी जाने नहीं दी। हज़रत जोश को भी अपने इस शिष्य पर बड़ा गर्व था। वे आबिद की स्वाभाविक योग्यता के प्रशंसक थे। अपने शिष्य के कलाम की प्रशंसा करते हुए, 'बहारे-ग़ज़ल' की भूमिका में लिखते है:

'बहारे गज़ल' आबिद मनावरी के कलाम का मजमूआ है। आबिद साहब मेरे ही अजीज और मेरे ही दामने-अदब से वाबस्ता हैं। मैं उनके लफ़्ज के चुनाव और ज़ौके-शायरी का कद्रदान हूं। जो कुछ कहते हैं, काफी सोच-समझकर कहते हैं। छोटी पंक्तियों में तो उनकी शगुफ्ता-बयानी हर शे'र को शाखे-गुल बना देती है।''

'बहारे-ग़ज़ल' की गज़लें यद्यपि परम्परागत ढंग से कही गई हैं, परन्तु इसमें अनेक ऐसे विचार मिलते हैं, जिनमें मौलिकता है। इश्क व आशिक़ी की रंगारंगी, आबिद के उस दौर की ग़ज़लों में स्पष्ट मिलती है। इस विषय को आबिद ने शुरू से ही नये अंदाज़ में बरता है। वे भी महबूब की जफा और आशिक़ की वफ़ा की बात करते हैं। वियोग की पीड़ा और मिलन का आनंद अनुभव करते हैं। गुल की चटख और बुलबुल के नग़में ने उन्हें शुरू से ही सरशार किया था परन्तु इसके साथ ही वे सांसारिक समस्याओं पर भी ध्यान देते दीखते हैं। उनके अनुसार, एक मनुष्य को इस संसार में खुशियां कम और निराशाएं व नामुरादियां अधिक मिलती हैं। आबिद ने भी जीवन का विकट संघर्ष झेला था। परन्तु हंस-हंस कर वे बड़े ही भावुक कवि थे। उसकी दृष्टि प्रत्येक समस्या पर रहती थी। कभी-कभी जब वे पूर्णतया बेबस हो जाते थे, तो मयखाने की राह लेते थे और अपना ग़म ग़लत किया करते थे। इन विचारों की पुष्टि, वे स्वयं अपने शे'रों में करते हैं :-

जिसने दुनियां में हक़ परस्ती की,
उसको जीने दिया ना दुनिया ने।
वाकई इसमें बंदगी है।
हमने पीकर भी देख ली है।
खोल दे मैंकदे का दर साकी।

ग़मज़दों की बारात आई है,
तलख़ बातें हम पसंद नहीं,
जो भी पूछो, वो प्यार से पूछो।
तेरी आंखें हैं वो मुकामे-जहां
मय परस्ती भी मात खाती है।
हासिल ज़िंदगी में वो लम्हात।
जो तेरी बज़्म में गुज़ारे हैं।

'शमीम गुल' नामक आबिद का एक और संग्रह 1967 में प्रकाशित हुआ। इसमें ग़ज़लों के साथ-साथ उनकी नज़्में और कई रूबाइयां भी शामिल हैं। जहां तक उनकी ग़ज़लों का संबंध है, उनमें कमोवश वही विशेषताएं हैं, जो 'बहारे-ग़ज़ल' की ग़ज़लों में हैं। परन्तु यहां उनकी ज़बान में एक स्पष्ट परिवर्तन दिखता है। वह यह कि इसकी ज़बान फारसी-मिश्रित और शेर कुछ कठिन लगते हैं। किन्तु इस परिवर्तन के साथ-साथ, शे'र का हुस्न बना रहता है। 'शमीम गज़ल' की कई ग़जलें गीत के रूप में भी मिलती है। ये गज़लें कोमल व लचकदार हैं; परन्तु अपने भीतर गहरे भाव समाये हैं। उदाहरणार्थ :-

किसी ने मुझे को याद किया है
दिल का इक-इक ज़ख्म हरा है
मैं तुझको, तू मुझको जाने
मेरा तेरा भेद ही क्या है ?
सबकी अपनी-अपनी नज़रें
कोंन अच्छा, और कौन बुरा है ?
गहरा सागर, चंचल लहरें
जीवन काग़ज की नैया है
मेरी ग़ज़लें सुनकर बोले
आबिद शायर अलबेला है।
धरती का हर चप्पा दर्पण
उसी का जलवा आंगन-आंगन
किस के हिज्र में योग लिया है
बोल, ऐ शिव मंदिर की जोगिन
बस, एक प्यार का फूल खिला था
फिर कांटों से भर गया दामन
उसकी दीद को आंखें तरसें
जिसका जलवा आंगन-आंगन

फिर कोई याद आया आबिद
फिर अश्कों से तर है दामन

'शमीम-गुल' में आबिद एक अन्य रूप में, सामने आते हैं। इसमें ग़मे-दौरान के साथ-साथ ग़मे-जानां के भाव भी पूरी प्रबलता से उभरते हैं। आबिद भी 'जिगर' की तरह जब मदिरालय में जाते हैं, तो प्रेरक बातों पर चलने के लिए तैयार नहीं होते हैं। आबिद पीने के बड़े शौकीन थे। वह पीने से, एक प्रकार की आत्म-विस्मृति अनुभव करते थे। उनके अनुसार यदि संसार मिट भी जाए, उनके होंठों से उनका पैमाना कदापि जुदा नहीं हो सकता :

मयखाने में यकलम्हा फुर्सत किसे हासिल ?
ऐ शेख, यहां किस्सा तेरा कौन सुनेगा ?

हज़रत बाज़ बला से बाज़ फर्माते हैं,
मेरे होंठो से कभी होगा ना पैमाना अलग।

शेख भी नाखुश है, अे आबिद, बरहमन भी ख़फ़ा
और हैं नाराज़ से पीरे-मयखाना अलग ।

बेखुदी में इस तरह छलका गए पैमाना हम
हो गए हैं बाय से सद रौंनके मयखाना हम ।

'शमीम-गुल' में 'बहारे ग़ज़ल' की भांति हल्के-फुल्के शे'र भी मिलते हैं। परन्तु आबिद का कमाल यह है कि उन्होंने अपने चिंतन पर कभी कोई आंच ना आने दी। ऊबड़-खाबड़ ज़मीनों में भी सरलता और रवानी पैदा करने में सफल हुए हैं। डॉ० ज्ञानचंद ज़बीं के शब्दों में 'शमीम-ए-गुल' में आबिद ने हल्के-फुल्के शे'र कहे हैं। उनकी खूबी यह है कि उनमें बड़ी सफाई, रवानी और बंदिश की चुस्ती पाई जाती है। इस नौउम्री में, शब्दों के प्रयोग को इतनी दक्षता से करना, प्रशंसनीय है। वजन और काफिए की कैद ने भी उन्हें भटकने नहीं दिया। हर बात बड़ी सहज और स्वाभाविक कहते हैं।

'शमीमे गुल' में कुछेक नज़्में भी मिलती हैं। इन नज़्मां में भी एक विशिष्टता विद्यमान है। तू कहीं वो तो नहीं/क्लर्क की खादाद. गीतांजलि से/ रंगों-मस्ती/किसके नाम/शिकवा एहले उर्दू/शबे-ग़म/दावते-ज़हद/ऐ मादरे-हिंदुस्तान वक्त/सिसकियां/ आह नूरपुरी/माजूर/हम लोग/दावते फिक्रो-अमंल ऐतराफ/मेरा वतन-केवल कुछ नज्में हैं, जिनसे आबिद का एक और रंग प्रकट होता है। यद्यपि आबिद नज़्म के शायर नहीं, परन्तु फिर भी उनकी नज़्में बड़ी जानकार हैं और फिक्रो-नज़र की दावत देती हैं। इन नज़्मों में आबिद की आत्मीयता जगह-

जगह टपकती है। वह तथ्य ढूंढ़ने और उन्हें प्रयोग करने में, कोई कसर नहीं रखते। इनमें से कई नज़्मों का विषय संघर्ष और टकराव है। यह संघर्ष निर्धन, धनवान, किसान, मज़दूर और पूंजी पति के दरम्यान है। इसको आबिद ने बड़ी खूबी के साथ उजागर किया है। कई नज़्में ग़ज़ल के रूप में हैं। दिवंगत प्रो० अब्दुल कादिर सरवरी, इन नज़्मों के बारे, अपने विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं : 'आबिद में अधिकांश युवा शायरों की तरह प्रगतिशाली लहर से भी प्रभावित हैं। कुछ नज़्मों में उनके यहां अमीर व गरीब, किसान व मज़दूर और पूंजीपति के जीवन के संघर्ष का प्रकट करने की कोशिश की है।'

'क्लर्क की रूदाद' आबिद की एक प्रतिनिधि नज़्म है । कविता में दीनता और लाचारी की पूरी दास्तान निहित है। एक क्लर्क के लिबास में आबिद इस नज़्म के माध्यम से, समस्त नौकरी पेशा वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह व्यंग्यात्मक नज़्म है। वह समाज की खोखली व्यवस्था पर व्यंग्य करते हैं।

आदतन आप ग़म उठाते हैं, लोग तकदीर खुद बनाते हैं
लीजिएगा यह नोट दस का है, केस मेरा भो दो बरस का है
आप सुलझायेंगे अगर इसको, आपको दूंगा दस के और दो

शाम को जब मैं निकला दफ़्तर से, दिल में दिलचस्प से इरादे थे
पहले सोचा कि 'बार' में जाऊं, जामो-मीना से दिल को बहलाऊं
और मिस नाज़ का सुनूं गाना, मैं वहीं खाऊं रात का खाना
नौ बजे फिल्म ही कोई देखूं, रात बारह बजे मैं घर पहुंचू

फिर ख्याल आया क्यों न घर जाऊं, और बीवी को साथ ले आऊं
वह भी खुश बख्त सैर करेगी, दोनों होंगे तो खूब गुज़रेगी
घर का सामान कुछ खरीदूंगा, खर्च करके फिजूल, क्या लूंगा ?
जो ज़रूरत के वक़्त काम आएं, ऐसे पैसे फिजूल क्यों जाएं ?

'शिकवा ए अहले-उर्दू' आबिद की एक और प्रतिनिधि नज़्म है। यह की एक व्यंग्यात्मक नज़्म है, जिसमें आबिद उर्दू भाषा को मिश्रित सभ्यता संस्कृति की प्रतीक, मानते हैं। कहते हैं कि उर्दू की शिक्षा तथा प्रसार से, हमारी व्यवस्था रंगों से भर गई है। उर्दू वालों ने इस भाषा से जीवन के सौंदर्य को और भी दोबाला किया है। परन्तु अफ़सोस कि इस वैज्ञानिक युग में इस भाषा से प्रेम व अनुराग करने वाले ही आर्थिक दुर्दशा, दीनता और असहायावस्था की चक्की में पिस गए हैं और भांति-भांति की कठिनाइयों व विपत्तियों के शिकार हो गए हैं। अपने विचारों को प्रभावक ढंग से प्रकट करते हुए, आबिद कहते हैं :

खलूसो शौक़ से खूने-दि लो ज़िगर के साथ,
नई हयात के खाकों में हमने रंग भरा।
हज़ार हैफ ! हमें यह सिला दिया तुमने,
हमीं से मकरो-तफ़ाज़ल, हमीं पे जुल्मों-जफा ।

'दावते जेहद'/ऐ दिले जाद/वक़्त/आदि इसी प्रकार की नज़्में हैं। इन नज़्मों में तर्क और संघर्ष का बोध हर जगह मिलता है लगता है कि आबिद स्वयं इस स्थिति और संघर्ष में गिरफ्तार हुए थे ।

कश्मीर की सुंदरता से कौन इंकार कर सकता है ? कई उर्दू शायरों ने, अपनी कृतियों में कश्मीर के हुसन को सराहा है। आबिद जैसे कलाकार, भला चुप कैसे रह सकते थे? उन्होंने 'मेरा वतन' नामक एक लिखी। वह अपनी मातृ-भूमि पर गर्व करते हैं।

इस पे हैरान होकर अक्सर दोस्त करते हैं सवाल
हम को भी तो यह बता, है कौन सा तेरा वतन ?
कौन सी वह सर-ज़मीं है, हम ज़रा यह जान लें,
जिसकी मिट्टी ने निखारा है तेरा यह फिक्रो-फन ।
कौन सी वह वादी-ए-गुलपोश है यह तो बता,
जिसकी रानाई में चमका है तेरा रंगो-सुखन ?
दोस्त जब यह पूछते हैं, फख्र होता है मुझे,
तमकनत से कहता हूं, कश्मीर है मेरा वतन

'शमीमे गुल' में मुक्तक और रुबाइयां देखने में आते हैं। ये भी विभिन्न विषयों से संबंधित हैं। 'बर जस्ता' आबिद का तीसरा काव्य-संग्रह है, जो 1984 में प्रकाशित हुआ। इसमें 1971 से लेकर 1982 तक गी कविताएं शामिल हैं। 'बरजस्ता' की ग़ज़लें न बहारे ग़ज़ल की ग़ज़लों के रंग में हैं और ना 'शमीमे-गुल' के.....बल्कि इनका अपना एक अलग रंग और खुशबू है। आबिद ने यद्यपि परम्परागत शायरी से शे'रगोई का श्री गणेश किया, परन्तु 'बरजस्ता' तक आते-आते वह लेखन के अनेक पड़ावों से गुज़र चुके हैं। वह आधुनिक शायरी से प्रभावित हुए बिना ना रह सके। उन्होंने वही रंग और रौशनी अपनाई, जो उनके अग्रज धारण कर चुके थे। परन्तु यहां भी उन्होंने अलग रास्ता अपनाया । 'बरजस्ता' की कई ग़ज़लों में खलील-उल रहमान आज़मी, शहर यार, बानी और वजीर आगा का रंग बखूबी पहचाना जाता है। आबिद के ये शे'र बताते हैं, कि वह किस हद तक अपने इन समकालीनों से प्रभावित थे :

पहले खुद आग लगा दी घर को,
खुद ही अब मह वे-तमाशा हूं मैं ।

क्या कहूं मैं किस इम्तेहान में था,
कैद खुद अपने ही मकान में था ।

बूंद मांगी तो समुंदर पाया,
फिर भी हैरत है कि प्यासा हूं मैं ।

खेत बंजर, पेड़ नंगे, सब कुएं बे-आब हैं,
जब से पक्के हो गए गांव के कच्चे रास्ते ।

कोई उम्मीद का तिनका नज़र ना आया मुझे,
कहीं यह अन्धा समुंदर निगल ना जाए मुझे ।

अपनी ही बात लगती है खुद भी गिरां मुझे,
हर दिन बदलना पड़ता है अपना बयां मुझे ।

चारों तरफ फिज़ा में है बिखरा हुआ धुआं,
इस चिमनियों के शहर में, ताज़ा हवा कहां ?

ये शेर आबिद की शायरी की कलात्मक
बुलंदी दर्शाते हैं ।

'बरजस्ता' की ग़ज़लें उपमानों से मालामाल हैं। इसमें आबिद ने ज़माने के दुःख दर्द का खुलकर ब्यान किया है। कहीं-कहीं उनका लहज़ा व्यंग्यात्मक भी हो गया है। परन्तु उनके विशिष्ट लहज़े और डिक्शन से, यह व्यंग्य कोमल भावों सहित सामने आता है। 'बरजस्ता' में आबिद नये मनोभावों के साथ, सामने आते हैं। ये ग़ज़लें शबनम से चुने हुए फूल की भांति अपनी ताज़गी बिखेरती हुई, पाठक को आकर्षित करती हैं। इनमें जहां फ़िक्रो-खयाल की बुलंदी है, वहां नगमगी और लोच बराबर मिलते हैं। आबिद संवेदना के शायर हैं। वह हर समय नये भावों के साथ प्रकट होते हैं और नयी मांगों को बरतने में, आगे रहते हैं। खुशनुमा उर्धू के साथ-साथ, हिन्दी शब्दों का प्रयोग उनकी ग़ज़लों में कई रंग भरते हैं ।

मेरे आंगन में भी ऐ कौसे कि जाह !
इक दिन उतर ज़िन्दगी में तेरा एक-एक रंग भरना है मुझे ।

आबिद के अनेक शेरों में हिन्दी देवमाला और प्रतीकों की परछाईयां भी नज़र आती हैं। उन्हें कृष्ण जी और श्री रामचंद्र जी से ग़हरा अनुराग है। आविद ऐसी अनेक घटनाएं अपने शेरों में प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं, जिनका संबंध कृष्ण जी और रामचन्द्र जी के पवित्र जीवन से रहा है। कई जगहों पर वह बुराई पर अच्छाई की विजय, स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। इसके स्पष्टीकरण में, उन्होंने प्रतीकों का सहारा लिया है। आबिद कभी भिक्षु बन कर चिराग जलने से

पहले ही अपनी गुफा में पहुंच जाते हैं और कभी शंकर का ध्यान करके वह गंगा को अपनी जटाओं में छुपा लेते हैं। कभी वह सच बोलने के अभियोग में दण्ड के योग्य ठहराए जाते हैं और कभी इस युग का सुदामा बनकर, कृष्ण की तलाश में दर-दर भटकते हैं। कभी रास रचाने के लिए गोकुल की राह पकड़ते हैं और कभी गोपियों के साथ अठखेलियां करते हुए दिखते हैं । आबिद की इस प्रकार की शायरी उनके एक और पहलू की ओर इशारा करती है कुछेक शे'र प्रस्तुत हैं :

देहलीज़ पर चिराग़ जलाते हो किस लिए ?
भिक्षु पलटके जा भी चुके हैं गुफाओं में ।

मिली है यह सज़ा सच बोलने की,
ज़ुबां पर अनगिनत छाले पड़े हैं।

मैं इस दौर का सुदामा हूं दर-बदर आबिद,
कहां है कृष्ण मेरा, जो गले लगाए मुझे ?

पैरवी गौतम की करना इस क़द्र आसान नहीं,
ज़िन्दगी को चश्मे-इब्रत से कभी देखा ना कर ।

जिन चिरागों से उठ रहा है धुआं,
आंधियों से वही लड़े होंगे ।

ऐ दिल, सारी दुनिया झूठी, सारे दुनिया वाले झूठे,
बस, एक प्यार का बंधन सच्चा, बाक़ी रिश्ते नाते झूठे ।

खुद अपनी ही कस्तूरी की खूशबू से बेकल,
अन्जाने में आहू लेकिन हर जानिब भटके ।

दिल की नगरी में वह पल भर हंसने हंसाने आया था,
जैसे गोकुल में एक छलिया, रास रचाने आया था ।

आबिद एक सच्चे शायर थे। उनके काव्य में इंद्रधनुष की तरह, बेशुमार रंग उभर कर सामने आते हैं। वह शब्दों के सदुपयोग पर, पूरा अधिकार रखते थे। अभी कुछेक वर्ष पूर्व उन्होंने लिखा था:-

मैं आंधियों से लड़ूंगा, यह मैंने सोचा था,
हवा एक ही झोंका, बुझा गया मुझको।

परन्तु अफसोस कि आंधियों से लड़ते-लड़ते, आबिद स्वयं आंधियों का शिकार हो गए। और हवा के एक ही झोंके ने, उन्हें हम से छीन लिया । पर वे तो हमारे दिलों में हमेशा ज़िंदा हैं, ज़िंदा रहेंगे । (अनु० शिव रैना)

बिन्द्रावन शर्मा

डॉ० सुषमा सरल

शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत और लोक संगीत के गायक श्री बिन्द्रावन शर्मा जी का जन्म 5 जुलाई 1937 को हुआ था। वह अपने परिवार में सबसे छोटे थे। इनके पिता का नाम "पं० हेमराज शर्मा और मां का नाम 'अमरी देवी' था। बिन्द्रावन शर्मा अभी एक साल के भी नहीं हुए थे कि उनके पिता नहीं रहे। पर मां ने उन्हें कभी किसी तरह की कमी को महसूस नहीं होने दिया। और वे उनके कुशल संरक्षण में पल कर बड़े हुए। घर की जिम्मेवारियों को समझने लगे। तीन चार नौकरियां भी की पर संगीत सब कामों के आड़े आ गया। वह संगीत में अधिक रुचि रखते थे। उन्हीं दिनों वह डोगरी संस्था के संगीत और कुशल कार्य कर्ता के रूप में सम्मानित किए गये। 'पं० कृष्णाराव जी महाराज' उनके गुरू थे । "इलाहाबाद युनिवर्सिटी" से उन्होंने संगीत की शिक्षा प्राप्त की और 1964 में वे सूचना विभाग में आए ।

वह अनेक वाद्यों को बजाना जानते थे। हारमोनियम, तबला, सितार, गिटार, वायलन, सुरमंडल, बांसुरी आदि। उन्होंने हारमोनियम पर माऊथ आर्गन जैसा साज बजाने का आविष्कार किया पर उसे लोगों के सामने लाने से पहले ही बीमार हो गये। उनके अनेक शिष्य हैं जो उनके द्वारा सिखाए गए संगीत से जीविका चला रहे हैं। उनके शिष्य रियासत जम्मू-कश्मीर के अलावा मुंबई, देहली, पुणे, पंजाब और विदेशों में भी रह कर संगीत साधना कर रहे हैं।

शर्मा जी नम्र स्वभाव के एक सुलझे हुए शास्त्रीय संगीतकार थे। लोक संगीत में गहरी रूचि होने के कारण भारत की लोकगीतों की जैसी एक विशिष्ट विधा 'भाख' गाने में उनको विशेष महारत थी।

सूचना प्रसारण विभाग में नौकरी करने के दौरान उन्होंने पूरे जम्मू-कश्मीर में अपनी गायकी, नाटकों और अनेक कलाओं से लोगों को प्रभावित किया। एक बार वह एक स्कूल में प्रोग्राम करने के लिए गए। गर्मी का मौसम था, बच्चे धूप

से तंग आ गए। बच्चे उठने को तैयार ही थे कि उन्होंने "सरस्वती मां" का स्मरण करके "राग मल्हार" का "आलाप" शुरू कर दिया। भगवान् की कृपा हुई चिलचिलाती धूप में आसमान में बादल छा गए और बच्चे आराम से बैठ गए।

श्री बिन्द्रावन शर्मा जी के दिल में मातृभक्ति इतनी थी कि वह परिवार से दूर होने की सोच भी नहीं सकते थे। सुप्रसिद्ध सितार वादक पं० रविशंकर जी" और उनके मित्र "श्री मोती राम जी" उन्हें देहली बुलाते रहे पर वह वहां नहीं गये। राम राज्य फिल्म देखने के बाद वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपने मां के कहने पर एक ऐसी लड़की से शादी कर ली जो शारीरिक रूप से स्वस्थ न थी। पर उन्होंने मां से कभी कोई शिकायत नहीं की। उनके दो पुत्र पैदा हुए, पर कुछ दिनों के बाद भगवान को प्यारे हो गए। फिर तीन लड़कियां और एक लड़का हुआ। वे बड़े प्रसन्न थे, उनका लड़का सुन्दर होने के साथ चतुर भी था। संगीत में बड़ी रूचि लेता, संगीत सीखने आये लड़कों की गोद में संगीत सुनते-सुनते सो जाता। खाना तक उनके बगैर नहीं खाता, संगीत सुनते सोता और संगीत सुनने के बाद उठता था।

1985 अक्तूबर के वे दिन मायूसी भरे दिन थे । अचानक पुत्र एक गम्भीर रोग से ग्रस्त हो गया। फिर कई दिन नींद न आने के कारण एक दिन लड़के ने अपने पिता जी से कहा, आप मुझे राग मालकोश सुनायें। शायद मुझे उसी से नींद आ जाए। अभी वो 'राग' को शुरू करने लगे थे कि वार्ड के एक डाक्टर ने कहा कि इससे मरीज़ परेशान होंगे। आप यहां गा नहीं सकते, तभी धीमी आवाज़ में 'मरीज़' लड़के ने कहा मुझे अगर इसके सुनने से नींद आ जाए तो आपको एतराज नहीं होना चाहिए। क्योंकि आपकी दवाई मुझे सुला नहीं सकती है, तब डाक्टर ने धीमी आवाज़ में गाने की आज्ञा दे दी। तभी बड़े सर्जन दौरे पर आ गए और मना करने लगे। पर उसी समय 'जूनियर डाक्टर' ने उन्हें सारी बात बताई तब डाक्टरों ने भी गाने की आज्ञा दे दी तथा जूनियर डाक्टर को उनके पास बैठने के लिए कहा ।

शर्मा जी ने 'आलाप' शुरू किया और राग अभी आधा भी नहीं हुआ था कि लड़का सो गया। सारे वार्ड के डाक्टर शर्मा जी के दोस्त बन गये, उन्हें अपने होस्टल और कई वार्ड के 'डाक्टर रूम' में भी ग़ज़लें आदि सुनाने के लिए कहने लगे । पुत्र से वंचित हो जाने के बाद इसका शर्मा जी के जीवन पर बड़ा गहरा असर हुआ। और उनका जीवन निराशा से अंधकारमय हो गया।

उन्होंने संगीत सिखाना भी छोड़ दिया। पर उनके नये पुराने शिष्य नहीं मानें। उन्हें फिर सिखाने के लिए विवश कर दिया। उन्होंने पी. जी. आई. में डोगरी गीत लिखे थे जिन्हें 'अभिनय थियेटर' में 27 जनवरी 1987 को प्रस्तुत किया गया जो लोगों ने काफी सराहे थे ।

इसके लिए 27 जनवरी, 1987 को मुख्यमंत्री डा० फ़ारूक अब्दुला ने उनके कार्यक्रम को सम्मानित किया। इसके बाद 'डायरैक्टर दूरदर्शन' श्रीनगर ने भी उन्हें दूरदर्शन पर कार्यक्रम देने को कहा पर वह नहीं माने। वह अपनी कला के धनी थे । वह किसी से कुछ नहीं चाहते थे। वह मूक साधक इतने में ही संतृष्ट थे। उनकी सेहत भी दु:खों के कारण ठीक न रही। 1992 जून के महीने में मानसिक तनाव अधिक होने के बाद आधा जिस्म कमज़ोर हो गया।

पुत्र की तरह वे भी उसी गंभीर रोग से ग्रस्त हो गये थे और फिर अच्छे न हो सके। नवम्बर 1992 में राज्य ने उन जैसा एक सुधी कलाकार खो दिया।

वेदपाल 'दीप'

❐ डॉ० वीणा गुप्ता

डोगरी ग़ज़ल के बादशाह और प्रगतिवादी विचारधारा के लेखक वेदपाल 'दीप' डोगरी के प्रतिभाशाली लेखकों में से एक थे। पत्रकारिता, साहित्य और राजनीति.........हर क्षेत्र में उन्होंने अपनी बेजोड़ प्रतिभा का प्रमाण दिया। वह एक मंजे हुए लेखक थे, विशिष्ट राजनैतिक कार्यकर्ता और एक सुलझे हुए पत्रकार थे, हर क्षेत्र में उन्हें गहरी रूचि और गहन अनुभव था, पर उन्होंने एक क्षेत्र की छाप या मामूली हस्तक्षेप भी दूसरे क्षेत्र में न होने दिया। बल्कि हर क्षेत्र को अपने मौलिक, शुद्ध और स्वस्थ रूप में बनाए रखा। यहां पद्मश्री प्रो० रामनाथ शास्त्री के विचारों को उद्धृत करना अनुपयुक्त न होगा, "अधिकतर कवि राजनीतिक दलों से कोई सम्बन्ध न रख कर भी सामाजिक राजनीति से प्रभवित हो जाते हैं। यह स्वाभाविक भी है, परन्तु वेदपाल 'दीप' की काव्य-साधना की यह एक असाधारण विशेषता है कि वे यद्यपि स्थानीय राजनीति से गहरा सम्बन्ध रखते हैं, एक राजनीतिक दल के सक्रिय कार्यकर्ता हैं तथा उसके साप्ताहिक उर्दू पत्र के संपादक हैं फिर भी उनकी काव्य साधना राजनीतिक प्रभावों से प्राय: मुक्त है ।"[1]

यहां बात आती है जीवन और यथार्थ के बारे में दीप के स्वस्थ दृष्टिकोण की, उनकी निष्पक्ष और बेलाग सोच की, अन्तस की सच्चाई की, जीवन मूल्यों की सही अक्कासी की और कविता को सच्ची भावनाओं से अलंकृत करने की अभिलाषा की । उन्होंने जीवन और जगत में जो कुछ होता, बीतता देखा अथवा भोगा-सुना उस सब से स्वस्थ और रचनात्मक अहसास ग्रहण कर निष्पक्ष भाव से जो आत्म चिंतन किया उसी को कला कौशल से संवारा और 'कविता' के रूप में प्रस्तुत किया। वस्तुत: साहित्य सृजन और विशेषकर कवितागोई के विषय में दीप का अपना दृष्टिकोण भी काफी उत्कृष्ट रहा है, 'And quite flows the stream' पुस्तक में उन्हीं के शब्दों......."एक सरकर्दा सियासी कारकुन होने पर भी जहाज़ के पक्षी की तरह मेरा मन राजनीति के समुद्र में दूर-दूर तक घूमने के बाद भी साहित्यिक जलपोत पर ही बसेरा लेता है। जीवन में

1. प्रो० रामनाथ शास्त्री, मधुकण, पृष्ठ-29.

काव्य-चिंतन में बिताए गए क्षण महत्वपूर्ण होते हैं ।[2] का उल्लेख इस तथ्य की पुष्टि करता है कि वेदपाल 'दीप' के जीवन में काव्य-चिंतन का स्थान काफी महत्वपूर्ण रहा ।

वेदपाल 'दीप' का जन्म सन् 1929 ई० में जम्मू के एक धर्मट्ट परिवार में हुआ। हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी तीनों भाषाओं पर पूरा अधिकार था। विद्यार्थी जीवन में ही साहित्य-सृजन की ओर रूचि बढ़ने लगी। कालेज के विद्यार्थी जीवन में इन्होंने हिन्दी में काफ़ी अच्छी कविताएं लिखीं और कालेज की पत्रिका के डोगरी सेक्शन के संपादक भी रहे। इनकी 'शल्या' नाम की कविता बड़ी प्रसिद्ध कविता थी। इसमें दर्द-वेदना भी थी, रोमांस भी था और भाषा-प्रवाह भी अनोखा था ।'दो सैनिक' नामक छोटा सा कविता संग्रह भी हिन्दी में प्रकाशित हुआ, जिसमें राजनैतिक विचार और क्रान्तिकारी भावना प्रबल थी।

दीप ने 1948 ई० में डोगरी में लिखना आरम्भ किया और उसकी प्रथम कविता थी......

डोगरे लोकें दी गल्ल केह् आक्खनी
रौहंदे बनाइयै सारें कन्नै ।।
रस्ते च इंदे भाएं कण्डे खलारो
मिलदे न फुल्लें दे हारें कन्नै ।।

वास्तव में उन्हें स्टूडेंटस यूनियन (Students Union) के सदस्यों के साथ डुग्गर धरती के भीतरी भू-भाग का दौरा करने का अवसर मिला जिसके दौरान उन्हें डुग्गरवासियों के निर्मल मन, उनके निष्छल प्यार, सादगी, और भोलेपन की निर्मल तस्वीरें देखने को मिलीं, जिनसे प्रभावित होकर उन्होंने अपनी धरती और अपने लोगों के गुणों को पहचाना, महसूस किया और फिर कलम की वाणी से मुखरित करने का कर्तव्य भी निभाया ।

1948 ई० में ही राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की हत्या पर दीप ने 'बापू दे संघी कपूत' शीर्षक की एक लम्बी कविता डोगरी भाषा में लिखी। इस लम्बी काव्य-रचना के साथ ही उन्होंने डोगरी में काव्य-सृजन की अपनी निरन्तर यात्रा आरम्भ की । "नमी अजादिये", "बदली गई दुनियां जा बदली गई अक्ख", "बदले ने सिज्जी दी संञ", "कल हा में कल्ला मेरे साथी निं गनोन अज्ज" आदि सुन्दर और भावपूर्ण कविताएं लिखीं। पर डोगरी कविता में 'दीप' की पहचानं विशेषकर एक ग़ज़लगो शायर के रूप है। इनकी ग़ज़लों का संग्रह "अस ते आं बनजारे लोक" 1968 ई० में प्रकाशित हुआ जिसे डोगरी ग़ज़ल की फुलवाड़ी का पहला फूल कहा जा सकता है। दीप ने डोगरी में गज़ल कहना तब शुरू

---

2. And ouite flows the stream पृष्टि -10.

किया जब कोई विरला-विरला साधक ग़ज़ल की इस रियाज़ में लगा था और पगडंडो अभी बनाने को थी। उसकी बनाई हुई पगडंडी आज एक अच्छा खासा मार्ग बन चुकी है और ग़ज़लगो शायरों का एक अच्छा खासा काफ़िला इस मार्ग की ओर अग्रसर है ।

कहना न होगा कि उनकी कविता को विशिष्ट बनाने के लिये उनके दारुण, अभावग्रस्त, असहाय और निस्संग जीवन की कटु अनुभूतियां और परिस्थितियों की अलग भूमिका रही। जिस प्रेम की उत्कण्ठा उनके रोम-रोम में थी उसी के लिये वे विषपायी होकर रह गये। जीवन के अंतिम क्षणों तक प्रिय के बिछोह की वही कटुता उनके कण्ठ में रही ।

यदि हम वेद पाल दीप की कविता की बात करें तो उनकी कविता में प्रेम का प्रत्येक आयाम देखा जा सकता है । उसमें यादों की घनी छांव भी है, वियोग की सुलगन भी, आकुल आहों और आंसुओं का रंग भी है और असफलताओं की निराशा भी । प्रिय के बिछोड़े के दुःख में विलीन होकर बेखबरी और कलंदरी का आलम भी दीप की ग़ज़लगोई में इन्द्र धनुषी जज़्बे के रंग भरता दिखाई पड़ता है।

उन्दा बाद्धा हा जां साढ़ा हा कसूर,
हुन्दे रेह अस जिन्दड़ी भर लूर-लूर ।

× × ×

दिखदे रेह मशुए गी डुबदे कोल-कोल,
लभदे रेह, हुन्दे कनारे दूर-दूर ।

ग़ज़ल के इन चन्द शे'रों प्रिय से बिछड़ने का गम और अपनी बेबसी का चरम छूता दिखाई पड़ता है। दूसरी ओर चाक गिरेबानी (गिरेबां फाड़ना) का भाव जो उर्दू ग़ज़ल का रिवायती रंग है। दीप की शायरी में यह जज़्बा पारंम्परिक होकर भी सहज और भोगी हुई अवस्था की ओर संकेत करता है :-

हिरखै दी रीत रस्म उ'आं गै, जि'यां क् ही,
कुर्ते दा ओह् लंगार उ'आ गै, जि'यां क् हा ।

× × ×

हसदा-हसदा बेदना दा भार चुक्की फिरा नां,
पीड़ ते पाला नां पर दुक्खे दा मारा बी नेईं ।

और भी:-

मेरी गुआची दिये प्रीते, कदें भविक्खा च लभ मुड़ियै,
में तेरी हीरवी च हर खिनै त्रै पन्छानू समझी व्यहार कीता ।

× × ×

सुदाइयें गी स्यानपा दे निं रास आए नियम नमैशी,
पुआह्ने पैर मलंग निकले बनौंट चोला लंगार की ता ।

दीप की कविता पर नज़र डालते हुए कहीं-कहीं फटेहाली के वर्णन भी देखे जा सकते हैं। पर यह बात भी पक्की है कि प्रेम का अंकुर तभी फूटता है जब उसे सौंदर्य की संगत मिलती है, क्योंकि ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। एक दूसरे को जगाने उभारने में सहयोग देते हैं।

बक्ख गै सुच्चे शलैपे दा गुहाड़,
नेईं इसी कज्जल दनासा चाहिदा ।

× × ×

रुक्खें दी छावें दा भरम हा,
बालें दे जालें च पलचेया।
मन सूध स्याना पखेरड़ू,
जिसी कैद बनियै सजा मिली ।

× × ×

रात औंदी जि'यां तेरे बाल करी जंदे न छां
तेरे ओठें साईं ऐ बड्डलै दी लाली केह् करां

पर यह सौंदर्य कभी-कभी एक रोग भी बन जाता है । दोनों में तालमेल नहीं बैठता। और दुनिया की रीत है ।

शकले उप्परा भोले-भाले, शैल सन्हाके प्यारे लोक ।
दिक्खे रूप शलैपे आह्ले, बिच्चा दा हत्यारे लोक ।।

साकी, जाम मैखाना आदि रिंदाना रंगत की शब्दावली ग़ज़लगोई में खास रंग भरती है। दीप की शायरी में भी हमें रिंदाना असर दिख पड़ता है पर इसमें रिवायती असर नहीं बल्कि आप बीतियों का असर और अहसास है । निम्न शे'रों में यह रंग देखा जा सकता है :-

प्यालें मनोई त्रेह् नां रस्सें बन्होआ हिरख,
मापक मिगी शराब ही ना तेरा संग हा ।

× × ×

पीते बिना गजारनी आयु कठन निं ही,
जेकर एह् होंदी मैह्रमों दौं, चौंह् ब'रें दी गल्ल ।।

× × ×

दुहारा समां लेइयै आनी ढुके आं,
तेरे साकिया इक घड़ी दे परौह्ने ।

× × ×

मन हिस्सले दा अज्ज निं पीने शा ठाकेओ,
छन्दा जे होन देओ लैह्‌र बैह्‌र दोस्तो ।

उनकी शायरी की यदि व्यंग्यात्मक शैली गहरी बात कहने की है तो आत्मा-परमात्मा का भेद या फिर जीवन-मृत्यु के रहस्य को भी अपेक्षा अध्यात्मवाद की पाक गंगा के लिए भी इस शैली का प्रयोग किया । वेदपाल की शायरी में भी अध्यात्मवाद के जज़्बे की रंगत देखने योग्य है ।

जदूं बी तेरी एह् नजर फिरकी,
तदूं जमाने दी अक्ख बदली ।
जदूं तेरा मी रे'आ निं स्हारा,
तदूंगै दोखी ने बार कीता।।

× × ×

गल्ल इन्नी गै भलाने गितै पीन्ने आं शराब,
जेह्‌ड़ा मैखाने च आवै, आवै जाने आस्तै ।

× × ×

मित्ती चा गै सु'रके हे ते मित्ती च समाना,
मित्ती थमां बक्खरे इ'यै चार दिन आं असलोक ।

× × ×

आयु दियां पाबंदियां दुनिया च कुसगी नेईं ।
आइयै दनां खड़ोती ही परती चली बसंत ।

× × ×

भविक्खा दा ज्याणा जेहदी औंगल,
फड़ियै चलदा समें दा चूहड़ बाबा ।

डोगरी ग़ज़ल ने भी प्रगतिवादी रुझानों की रोशनी में हर प्रकार का विरोध किया और धार्मिक पाखंडों की आलोचना और भर्त्सना की । इन रुझानों के अनुसार मनुष्य ही सर्वोपरि है, धर्म और जातपात के बंधन धार्मिक शोषकों द्वारा रचे गए आडंबर हैं। असली धर्म तो मनुष्यता है जिसकी रोशनी में सारे संसार को एक परिवार के रूप में देखा जा सकता है। वेद पाल दीप की शायरी में इस तथ्य को उजागर करने वाले कुछ शेयर इस प्रकार हैं :-

मिलने दी व्याकुलता मनुक्खै च ऐ इन्नी,
खिण्डे दा जि'यां इक गै परिवार आं असलोक।

× × ×

बनना ई जे मनुक्ख तां मीरी दी गल्ल छोड़,
पुच्ची मनुक्खता गी दिक्खना तां बन गरीब।

× × ×

मंदरें ते मसीतें च नेईं माह्नु कोई मिलेआ,
कोई हिन्दुपनै ई रोऐ कोई दस्सै मुसलमानी।

मज़हब परस्ती और पंडितों मुल्लाओं पर व्यंग्य करते हुए उनका स्वर काफ़ी तीखा लगता है ।

आरती लोऽकेह् करै महन्ता, अजें तेरी बुद्ध,
आद् कदीमी दे गै न्हेरे थमां अग्गें निं बधी।

× × ×

स्हाड़े मैखाने च फ्ही बी, दुक्खे दा किश लाज ते ऐ,
तेरी केह् मसीती मुल्ला तूं दस्स किन्ने तारे लोक ।

× × ×

माह्नू दी पुच्छ-गिच्छ नेईं कुदरै, करी चलो,
मुल्लां परोहत् ते मसीत मंदरें दी गल्ल ।

× × ×

जां ऐह् किल्ला मंदरै दा, धर्म सौंगल गल अजें,
ऐ कसर बनमानसा । माहनु खोआने आस्तै ।

'दीप' मुख्य रूप से प्रगतिवादी विचारधारा के कवि थे । वह सामंतवाद और पूंजीवाद के विरुद्ध संघर्षरत रहे। उनकी रचनाओं में कहीं राजनैतिकता भी मिलती है और निराशा का स्वर भी पर उसकी यह निराशा अपने तक ही सीमित है । समाज के प्रति उनका दृष्टिकोण प्रगतिवादी है। ''नमीं अजादिये'', ''होली'' जैसी कविताओं में वह दुनिया में हंसी-खुशी तथा नई उमंगे-तरंगें और नई आशाएं बांटने और असहाय लोगों को साधन जुटाने की बात कहता है। अपनी ग़ज़लों में भी उसने अपने जीवन की निराश गलियों की बात छोड़ उद्यम और हौसले की बात कही है। उसे अपने उद्यम, हौसले और अपनी मानसिक शक्ति पर भरोसा है। वह विपरीत परिस्थितियों में जीने का आदी है, मन के झंझावात को शान्त कर उसे तबाही से बचाने में भी बढ़-चढ़ कर है। एक ग़ज़ल के कुछ शे'रों में यह बात इस प्रकार कही गई है :-

मनै गी कुतै बक्खी लाना गै पौग ।
तबाही शा इसगी बचाना गै पौग ।

× × ×

कदें बाज इ'यां बी दिंदा ऐ मन,
कुसै नेई बी औना तां औना गै पौंग ।

× × ×

अजें मेद बाकी ऐ उन्दे थमां
अजें सिलसले गी बधाना गै पौंग ।

संघर्ष और चुनौती को कवि ने जीवन जीने का साज़ कहा है इसीलिए धमकाने वाले, भयभीत करने वाले हिलोरे और कठिन एवं यातनापूर्ण राहें उसे जीवन-यात्रा की राह आसान बनाती लगती हैं ।

राहू डिब्ब खडिब्बी पार करी जिंदड़ी दे नाडू ने बुज्झेआ,
पद्धर रस्ते पेइयै औंखा किश होर सफर होई जंदा।

× × ×

जिन्दड़ी दी बंसी सृष्टि दी जमना प बजदी रे'ही,
मौती दा कैंस बाह्‌में गी लुआरदा रे'आ ।

दीप की कविता में उदास अंधियारों में उद्यम का दीप जलाने और नई तर्ज़ का तराना गाने का अटल विश्वास भी उच्च स्तर का है। वह किसी भी प्रकार की विपरीत परिस्थिति में हौसला नहीं हारता बल्कि आशावाद की मशाल लिए मुसीबतों की दीवार को गिराने के लिए तत्पर रहता है। इस संदर्भ में कुछ शे'र इस प्रकार हैं :-

न्हेरा ऐ गुप्प, दूर ऐ बडला ते मन दुआस,
बालो दीआ, छेड़ो कोई राग नमी तरज ।

× × ×

पिण्डे दा परसा अत्थरूं अक्खी दे बेचियै
प्राणें दा दाऽबी लाई देऐ कोई ता केह् ऐ हरज ।

× × ×

सदा पतझड़ आह्‌ले झूरे निं रौह्‌ने,
नमें डूर फुटने नमें बूर पौने ।

और इस नई रोशनी के लिए ज़रूरी है कि अतीत की यादों को भूल कर नए तराने छेड़े जाएं। नई राहें बनाई जाएं और नई रवायतें चलाई जाएं । निम्न शे'र में यह भाव कितना स्पष्ट है :-

गोआची गेआ ऐं बरेतिया च नमी घास पा,
पछोंकड़ै गी बलग नईं जने-खने शा राह निं पुच्छ ।

उद्यमी और मेहनतकश लोग दिन रात एक करके राष्ट्र और समाज के लिए सुख-सुविधा के साधन जुटाते हैं। किसान रात-दिन काम कर अनाज के भंडार भरता है और गरीब मज़दूर अपना लहू-पसीना एक करके सुन्दर-सुन्दर भवन खड़े करता है लेकिन न तो किसान को अपने लहू-पसीने से सींचा अनाज नसीब होता है और न ही मज़दूर को अपना सर छुपाने के लिए सिवाए नीले अम्बर के कोई पक्की छत नसीब होती है। इस प्रकार मेहनतकश लोगों का शोषण इस प्रगतिवादी युग के माथे पर एक दाग़ है जिसे वेदपाल 'दीप' ने उकेरा है।

फसल चंगी ऐ पर टुक्कर निं जुड़दा गरीबै गी,
फ्ही करसानै दी एह मेहनत सफल आक्खो क नेईं आक्खो ।

यह सामाजिक असमानता, शोषण, जातिवाद और भ्रष्टाचार अन्ततः क्रांन्ति को जन्म देते हैं और मेहनतकश लोग अपने हक की खातिर दरांती के स्थान पर हाथ में तलवार ले रणक्षेत्र में उतर पड़ते हैं। दीप की कविता में इस प्रकार के क्रान्तिपूर्ण स्वर बड़े सुलझे हुए अन्दाज़ में मुखरित हुए हैं :-

उट्ठी ऐ रात नडाल क् जारो, समां बदलने आहला ऐ,
बडले ने मारी ऐ छाल क जारो, समां बदलने आहला ऐ ।

× × ×

ओह ज्वाला मुखिये मुंह खोह्ले, कम्बी धरती परबत डोल्ले
इक औन लगा भुंचाल क जारो समां बदलने आह्ला ऐ ।

× × ×

मुरझाए दे पतर बी पे न बिम्बली भुञां,
आक्खी गिया कन्ने च, केह् बाऊ दा फनाका ।

× × ×

आवै भूंचाल ता केह् झक्खड़ चले जे तां केह्
डिग्गग कुदै जे, डिग्गग कोई उच्चड़ा मनारा

उसके दृष्टिकोण में इन शोषक महलों को तभी ललकारा जा सकता है यदि मनुष्य स्वयं संघर्षशील रहे और निरन्तर कार्यरत रहे। भाग्य पर निर्भर रह कर किसी को चुनौती नहीं दी जा सकती। एक ग़ज़ल के निम्न शे'रों में यह बात दर्शनीय है:-

न यकीन किस्मत् पर, न कबूल कोई स्हारा,
राहियें गी मंजलै दा, बस चाहिदा ऐ शारा।

× × ×

अपनी ही नीत पक्की थि'ड़के निं अपने थाह्रा,
निं तां असेंगी दिन्दा धोखा कुसै दा लारा।

× × ×

सब साथ छोड़ी गे न, चमकै दा इक तारा,
खबरै इ'यै ओह् मंजल, खबरै इ'यै ओह् थाह्रा।

इस प्रकार वेदपाल 'दीप' की कविता का अभिव्यक्ति पक्ष उनके स्वस्थ चिंतन का प्रमाण देता है, जो पाठक अथवा श्रोता पर रचनात्मक प्रभाव डालने की सामर्थ्य रखता है। जहां तक उसकी शायरी के कलापक्ष का सम्बन्ध है इस बात में कोई संदेह नहीं कि वेदपाल दीप ने अक्षरों की करीनाकारी की अपेक्षा भावपूर्ण अभिव्यक्ति को अधिक महत्त्व दिया है ।

अक्खरें दा नईं तमासा चाहिदा।
शायरी च अर्थ मासा चाहिदा ।

कई बार भाषा की संरचना और उसकी प्रकृति के कारण इस प्रकार की छूट लेने की आवश्यकता महसूस होने लगती है। इतना ही नहीं शायरी में अर्थगत चमत्कार और कलात्मक सौंदर्य लाने वाले उपमा, रूपक आदि अलंकारों का यथोचित और प्रभावपूर्ण प्रयोग वेदपाल दीप की शायरी का विशेष गुण है।

वेदपाल दीप की शायरी जीवन-यथार्थ के विभिन्न रंगों और पक्षों को अभिव्यक्ति देने के कारण हर समय और हर परिवेश में अपनी महत्ता रखने वाली है। अपनी कविता उन्होंने जो कुछ कहना चाहा वह सभी के अन्तस् को छूने वाला, मुसीबतों के अंधियारे में उद्यम और हौसले के दिये जला संघर्ष की राह प्रशस्त करने वाला है। इस फक्कड़ स्पष्ट वक्ता कवि से डोगरी कविता और विशेष कर डोगरी ग़ज़ल को कई आशाएं थीं । 4 फरवरी 1995 को डोगरी साहित्य की फुलवाड़ी से अचानक यह अनन्य पुष्प झड़ा और मिट्टी में जा मिला।

पं० उमादत्त शर्मा

❑ परमिन्दर परम

प्राकृतिक सौंदर्य कला और शौर्य का आख्यान डुग्गर धरती पर लोक-संगीत तथा शास्त्रीय संगीत दोनों साथ-साथ ही विकसित होते आए हैं। शास्त्रीय संगीत परम्परा को जीवित रखने के लिए इस धरती के शास्त्रीय संगीत के मर्मज्ञों की एक महत्वपूर्ण भूमिका है ।

डोगरी के महान् शास्त्रीय संगीतकारों में "पं० उमा दत्त शर्मा" जी का नाम बड़े आदर तथा सम्मान के साथ लिया जाता है। उनके संगीत का जादू सुनने वालों को मोहित कर देता था। उन्होंने कठोर परिश्रम करके संगीत-शिक्षा प्राप्त की तथा अपनी शिक्षा पूरी करने के पश्चात् उतने ही परिश्रम तथा उत्साह से अपने शिष्यों को भी संगीत की शिक्षा प्रदान की। पं० जी ने संगीत शिक्षा निःशुल्क और निस्वार्थ दी। उन्होंने संगीत विद्या को दान के रूप में बांटा। हमारे शास्त्रों में विद्या का दान महादान माना गया है ।

एक प्रसिद्ध गायक होने के साथ-साथ पंडित जी एक कुशल तबला-वादक के रूप में भी प्रसिद्ध हुए तथा अन्य कई साज़ों की भी अच्छी जानकारी प्राप्त की। इसी कारण उनकी शिक्षा में गायन तथा वादन दोनों ही शामिल थे। उनके कुछ शिष्यों ने प्रसिद्ध गायकों तथा कुछ प्रसिद्ध वादकों के रूप में महान ख्याति प्राप्त की है। इनके शिष्यों में श्री हंसराज (गायक), श्री मूलराज दिलरूबा (वादक), श्री कृष्ण लाल वर्मा (तबला-वादक), श्री ओम प्रकाश (तबला-वादक) आदि शास्त्रीय संगीत में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं ।

पं० जी के शिष्यों में गायक श्री लक्ष्मीकांत जोशी जी का नाम भी बड़े आदर-सम्मान से लिया जाता है। उनके गायन में पं० जी के ही गुण विद्यमान हैं। चाहे पंडित जी इस समय इस संसार में नहीं हैं परन्तु उनके द्वारा प्रज्वलित किए गए दीप आज भी डुग्गर धरती को कला की रोशनी प्रदान कर रहे हैं।

विश्व प्रसिद्ध कला कार पं० शिव कुमार-शर्मा (संतूर वादक) पंडित जी की इकलौती सन्तान हैं। शिव कुमार जी ने अपनी कला द्वारा डुग्गर धरती का नाम सारे विश्व में रोशन कर दिया । इन्होंने भी संगीत शिक्षा अपने पिता पंडित जी से ही

प्राप्त की । पं० शिव कुमार शर्मा एक संतूर वादक होने के साथ-साथ एक सिद्धस्त तबला वादक भी हैं।

पं० उमादत्त जी के शिष्यों में श्री हंसराज (गायक) जो आज भी अपनी मधुर तथा मोहक आवाज का जादू जगा कर श्रोताओं को मुग्ध करते हैं, इनकी आयु लगभग 70 वर्ष की है श्री हंसराज जी के शब्दों में "मैं आज संगीत के क्षेत्र में जो कुछ भी हूं, वह सारी देन पं० उमा दत्त शर्मा जी की है। पं० शर्मा जी की ही कृपा से मैं पिछले कई वर्षों से नियमित रूप से गायन कार्य बिना किसी रुकावट के कर रहा हूं।

श्री हंसराज जी ने दस वर्ष की अवस्था में ही पं० शर्मा जी से संगीत शिक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया था। पंडित जी ने भी बड़ी लगन के साथ उन्हें शिक्षा प्रदान की। महाराजा हरि सिंह के दरबार में जब पहली बार श्री हंसराज जी ने बिना किसी संकोच और भय के गायन किया तो सारा दरबार उनके मधुर स्वरों में डूब गया और उनकी भरपूर प्रशंसा हुई। वास्तव में श्री हंसराज जी के इस सम्मान तथा प्रशंसा के पीछे पं० उमादत्त शर्मा जी की ही कुशल मार्गदर्शन था।

पं० शर्मा जी के शिष्यों में एक और शिष्य श्री कृष्ण लाल वर्मा जम्मू-कश्मीर के जाने माने तबला-वादकों में से एक हैं। इनकी तबला-वादन कला में एक अच्छे गुरू का चित्र उभरता है। श्री कृष्ण लाल जी ने अपनी कला का प्रदर्शन अपने राज्य में तथा बाहर अन्य कई स्थानों पर भी किया तथा प्रसिद्धि प्राप्त की ।

पं० शर्मा जी ने अपनी संगीत शिक्षा बनारस में रहकर प्राप्त की । एक कुशल गायक होने के साथ-साथ उन्हें तबले की विद्या का भी पूरा-पूरा ज्ञान था। जब जम्मू में रेडियो स्टेशन की स्थापना हुई तो पं० शर्मा जी ही ऐसे व्यक्ति थे जो कि सबसे पहले कलाकार के रूप में भर्ती किए गए। इससे पहले वे लाहौर रेडियो स्टेशन पर गाते थे। जम्मू रेडियो स्टेशन पर इन्होंने 60 साल तक नौकरी की और फिर वहीं से सेवा मुक्त हो हुए।

कहते हैं कि भारत में कहीं से भी जब कोई कलाकार डुग्गर धरती जम्मू आता तो वह अक्सर पं० श्री उमादत्त शर्मा जी के निवास स्थान पर ही ठहरता था। एक कलाकार के प्रति पंडित जी के मन में सदा से आदर व सेवा की भावना रही। महाराजा हरिसिंह जी के दरबार में पंडित जी एक लम्बे समय से गाते रहे थे। महाराजा हरिसिंह जी की दृष्टि में पं० जी एक अतिस्तुत्य कलाकार व्यक्ति थे।

उनके शिष्यों में गोपी नाथ कौशिक भी हैं। कहते हैं पं० जी ने जैन बाजार में एक विद्यालय भी स्थापित किया। इस विद्यालय में वे लोगों को संगीत शिक्षा दिया करते थे। छात्रों के अंतर में छिपी कला को बाहर लाने और उभारने के लिए इसी विद्यालय में संगीत के कार्यक्रमों का समय पर आयोजन भी किया जाता था। जिन्हें उस समय बैठक के नाम से जानी जाती थी।

पं० शर्मा जी ने अपने पुत्र श्री शिव कुमार शर्मा जोकि इस समय सम्पूर्ण विश्व में एक जाने-माने संतूर वादक के रूप में प्रसिद्ध हैं, उनको प्रारम्भ में तबले की शिक्षा दी, परन्तु इस दौरान उन्हें श्रीनगर रेडियो स्टेशन पर स्थानांतरित कर दिया गया। वहां पंडित जी की भेंट सूफ़ियाना कलाम के उस्ताद गुलाम अहमद अली नवाब के साथ हुई जोकि उस समय श्रीनगर रेडियो स्टेशन में ही कार्यरत थे। सूफ़ियाना कलाम एक ऐसा संगीत है जिसमें संतूर वाद्य का प्रयोग होता है। पं० शर्मा जी ने जब अली नवाब जी से इस वाद्य के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की तो उसी क्षण उनके मन में विचार आया कि इस वाद्य का प्रयोग भारतीय संगीत में भी किया जा सकता है। और यह तब सम्भव हो सकता था जब इस वाद्य में कुछ तार और जोड़े जाएं । उन्होंने इस कल्पना को यथार्थ में बदलने का निश्चय कर लिया। पं० शर्मा जी ने यह कार्य अपने पुत्र श्री शिव कुमार शर्मा जी को सौंपा। अपने पिता की भांति शिव कुमार जी ने भी अपने अथक प्रयासों द्वारा इस कार्य को सम्पन्न किया। इसके परिणामस्वरूप संतूर केवल भारतवर्ष में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में शास्त्रीय गायन के वाद्य के रूप में प्रचलित हो गया। इस प्रकार उन्होंने संतूर वादन की प्रेरणा अपने सुपुत्र श्री शिव कुमार शर्मा जी को दी और फलस्वरूप डुग्गर धरती का नाम भी सम्पूर्ण विश्व में अमर हो गया।

डुग्गर धरती पर शास्त्रीय संगीत को जीवित रखने के लिए पंडित जी ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई । पं० शिव कुमार जी के शब्दों में "मैं आज जिस स्तर पर पहुंचा हूं वह मेरे पिता की ही देन है।" पं० शर्मा जी के मन में संगीत सीखने की लालसा दरबारी गायकों को सुनकर उत्पन्न हुई जोकि रियासती राजाओं के दरबारी गायक थे । उन्होंने दरबारी कलाकार श्री हरनाम दास जी से शिक्षा प्राप्त की। बाद में अपनी संगीत साधना को जारी रखने के लिए वे बनारस चले गए। बनारस में पं० शर्मा जी की भेंट वहां के मशहूर गायक पं० रामदास जी के साथ हुई कहते हैं कि बनारस में एक कार्यक्रम में रामदास जी अपना गायन प्रस्तुत करने के लिए गये। गायन शुरू किया तो वहां पं० उमादत जी भी इनके गायन का आनन्द उठाने गए । जब उन्होंने 15 मात्रा के सवारी ताल में

अपना गायन शुरू किया तो जो व्यक्ति तबले पर संगत कर रहा था, वह इस ताल में असफल हो गया। पं० शर्मा जी जोकि उस समय वहां उपस्थित थे उन्होंने श्री रामदास जी को संगत प्रस्तुत की और इस प्रकार रामदास जी ने अपना गायन पूरा किया। गायन के उपरान्त रामदास जी ने प्रसन्न होकर पं० शर्मा जी को अपना शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया।

शिव कुमार जी को संतूर वाद्य को बजाने की प्रेरणा उनके पिता से ही प्राप्त हुई थी। संतूर पहले मात्र कश्मीरी सूफियाना कलाम में ही प्रयुक्त होता था परन्तु भारतीय शास्त्रीय संगीत में इसके प्रयोग को लेकर पं० शर्मा जी ने लगभग दो वर्ष तक इस वाद्य पर शोध किया। इसके बाद उन्होंने यह वाद्य अपने सपुत्र श्री शिव कुमार जी को सौंप दिया और उनको यह आशीर्वाद दिया कि यदि विश्व में जाने जाओगे तो केवल संतूर के नाम से ही जाने जाओगे और आज पं० शिव कुमार शर्मा जैसे अपने पिता का ही वह मूर्त्त आशीर्वाद हैं।

सन् 1968 ई० में पंडित जी रेडियो स्टेशन की नौकरी से रिटायर हुए। उस समय वे 60 साल की अवस्था में थे। सन् 1972 ई० में जब वे अपने सुपुत्र के साथ रह रहे थे तो स्वास्थ्य में खराबी आने के कारण उनकी अकस्मात मृत्यु हो गई। इस प्रकार डुग्गर धरती ने ''सरस्वती मां'' के एक और परम भक्त को खो दिया।
